गीता प्रतिपादित
योग मार्ग

(गीता अध्याय छः पर आधारित)

-ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा

गीता प्रतिपादित

योग मार्ग

(गीता अध्याय छः पर आधारित)

ब्रह्मर्षि विश्वात्मा बावरा

दिव्यालोक प्रकाशन

ब्रह्मर्षि आश्रम, विराट नगर,

पिंजौर, हरियाणा

फोन - 01733-266170

प्रकाशक :
दिव्यालोक प्रकाशन
ब्रह्मर्षि आश्रम,
विराट नगर, पिंजौर (हरियाणा)
फोन : 01733–266170

© लेखकाधीन

संकलयिता :– आदित्य भारती परिव्राजिका
सम्पादन :– ब्रह्मऋता परिव्राजिका

प्रथम संस्करण :– व्यास पूर्णिमा
जुलाई 2003, सम्वत् २०६०

शब्द संयोजन :– *अमित शर्मा*

प्रतियाँ :– ११00

मूल्य :– 100

मुद्रक :–दी प्रैस, नवीन शाहदरा, दिल्ली–११००३२

दो शब्द

'गीता प्रतिपादित योग मार्ग' प्रातः स्मरणीय, परम वन्दनीय, अर्चनीय मेरे परम श्रद्धेय गुरुदेव का स्वयं का जीया हुआ मार्ग है। उन्होंने स्वयं इस मार्ग का अनुसरण कर अपने लाखों शिष्यों को इस पथ पर चलने की राह सिखाई। इसी मार्ग पर चलते हुए उनके इस पार्थिव शरीर का उत्सर्ग हमें सदैव प्रेरणा देता रहेगा। इस जीवन के चालीस वर्ष जो उनके श्रीचरणों के साथ ही रहे, मैंने अपनी आँखों से देखा है कि उनका रोम-रोम कैसे राम से युक्त था और उनकी स्वयं की पक्तियां अन्तर को उद्वेलित कर देती थी -

रोम रोम में राम की जब गूँजे रंकार।
तब जानयो तू बावरा भयो राम से प्यार।

ऐसे ब्रह्मनिष्ठ योगी के व्यवहारिक जीवन में कर्मठता, सरलता, मृदुता, अनासक्ति का अद्भुत समावेश था। यही अद्भुत समन्वय ही तो वह यौगिक जीवन पद्धति है जो वह अपने प्रत्येक शिष्य के जीवन में देखना चाहते थे। मुझे विश्वास है कि जिज्ञासु साधक इस ग्रन्थ के पठन से सुन्दर एवं सुखद जीवन जीने की दिशा प्राप्त करेंगे। इस यौगिक जीवन पद्धति के आधार पर चलते हुए भारत के महान् सम्राटों ने इस देश को उन्नति के शिखर पर पहुँचाया है। यह केवल व्यक्ति के जीवन के उत्थान की प्रक्रिया नहीं अपितु पूरे समाज, राष्ट्र और विश्व के जीवन विकास की प्रक्रिया है।

यह लघु पुस्तिका श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय छः पर आधारित प्रवचन हैं जो पूज्य गुरुदेव ने अपनी साधना स्थली उदयपुर(राजस्थान) में 1998 में पाँच दिनों में दिये थे। इस पुस्तक का संकलन हमारी प्रिय आदित्य भारती जी ने किया और आज व्यास पूर्णिमा के शुभपर्व पर मैं श्रीगुरुदेव के पावन श्रीचरणों में भेंट कर रही हूँ। मैं अपने बाबा जी से सदैव कहा करती थी कि गुरु जी मैं आपकी 100 पुस्तकें अवश्य प्रकाशित करूँगी, आगे की प्रभु जानें, शायद इसीलिए वे सदैव शक्ति दे रहे हैं। आज के इस पावन दिवस पर उनके श्रीचरणों में कोटिशः प्रणाम करते हुए उनके आशीर्वाद की आकांक्षा में -

ब्रह्मऋता परिव्राजिका,
अबोहर

उदयपुर
17.03.1998
प्रातः

१

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

करुणानिधान भगवान् की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यह मेरी आन्तरिक शुभ कामना। यहाँ पर आप लोगों को गीता और उपनिषद् से सम्बन्धित कुछ बातें बताऊँगा। मानव समाज के लिए भगवान् का दिव्य संदेश है –

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।
(गीता ६/५)

हे मनुष्यो! तुम अपने उत्थान और पतन के लिए स्वयं जिम्मेदार हो। तुम्हें चाहिए अपने द्वारा अपना उत्थान करो, अपने द्वारा अपना पतन मत करो। तुम्हारी अपनी आत्मा के उत्थान में तुम्हारा अपना मन ही कारण बनेगा। यहाँ आत्मा शब्द का अर्थ होता है मन। मन हीं व्यक्ति का शत्रु तथा मन ही व्यक्ति का मित्र है। उपनिषद् कहती है कि हमारे जीवन की अभिव्यक्ति में पांच आवरण हैं। पहला आवरण है अन्नमय कोश। कोश माने आवरण। दूसरा आवरण प्राणमय कोश है जिसे इन्द्रियों का समूह कहते हैं। तीसरा आवरण है मनोमय कोश। चौथा आवरण है विज्ञानमय कोश और पांचवा है आनन्दमय कोश। इन पांच आवरणों में आपकी चिदांश सत्ता जो आत्म स्वरूप है, वह अवस्थित है। इन सारे कोशों का अस्तित्त्व उस आत्मा के प्रकाश में ही है। बीज रूप से आपकी अपनी आत्मा ही है। यदि चेतन इन कोशों को

प्रकाशित न करे तो इन कोशों का कोई अस्तित्त्व नहीं होगा क्योंकि ये सारे कोश प्रकृति के परिणाम हैं। प्रकृति के सूक्ष्मतम तत्त्वों को आकर्षित करके इन कोशों के रूपों में परिणत करना, यह आपकी आत्मा का ही वैभव है नहीं तो ये स्थूल पदार्थ शरीर के रूप में संगठित कैसे हो सकते हैं? आप सभी पढ़े–लिखे हैं जानते हैं कि आपका शरीर पंच महाभूतों का ही संघात है। ये पंच महाभूत तो बाद में बने हैं। उनसे सूक्ष्म पंच तन्मात्रायें हैं। तन्मात्राओं से भी सूक्ष्म एटम्ज़ हैं। उनसे भी सूक्ष्म ऐनर्जी है जो कि आपके इन पांचों कोशों का मूल आधार है। ये जो पांचों कोशों के रूप में ऐनर्जी कार्य कर रही है, इसका मूलाधार आपकी चिदांश सत्ता है जिसे आप जीवात्मा कहते हैं। यह परमात्मा की एक छोटी सी ज्योति है, एक छोटी सी किरण है। उसी के कारण ये पांचों कोश आपके स्वरूप में अभिव्यक्त हैं। इनमें से मनोमय कोश मध्य में है, नीचे अन्नमय और प्राणमय कोश हैं। अन्नमय कोश माने स्थूल शरीर, प्राणमय कोश माने आपकी इन्द्रियां। इन्द्रियों को प्राणमय कोश कहा जाता है क्योंकि प्राण के द्वारा ही सब संचालित होती हैं। यदि प्राण का आना–जाना बंद हो जाए तो इन्द्रियां निक्कमी हो जाएंगी, कुछ नहीं करेंगी। इनके ऊपर आपका मनोमय कोश है। मनोमय कोश मध्य में है। दो कोश उसके नीचे हैं और दो कोश इसके ऊपर हैं। विज्ञानमय कोश और आनन्दमय कोश मनोमय कोश से ऊपर हैं और उसमें बोध तथा सीमित अहं, ये दो तत्त्व आपके साथ जुड़ते हैं। बोध माने आपका ज्ञान और सीमा अहं में है। मूल चेतन सत्ता में तो कोई सीमा नहीं है। मूल चेतन सत्ता तो अनन्त है। वह तो 'सत्यं ज्ञानं अनन्तं' है इसलिए इसे ब्रह्म कहते हैं। जब वही चेतन सत्ता आपके चित्त के माध्यम से अभिव्यक्त होती है तो उसकी संज्ञा जीव हो जाती है। जहाँ वह अभिव्यक्त होती है, जहाँ उसकी जीव संज्ञा है, उसको आनन्दमय कोश कहते हैं। वह आनन्दमय कोश अनन्त से सम्बन्धित है। उससे आगे –

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कदाचनेति।

(तैत्तिरीय० २/४–१)

उपनिषदें ऐसा संदेश देती हैं। इससे आप लोग समझ गए होंगे कि आपके मन के ऊपर विज्ञानमय कोश और आनन्दमय कोश है, आपके मन के नीचे अन्नमय कोश और प्राणमय कोश है। यदि आपका मन प्राणमय और अन्नमय कोश की तरफ दौड़ता है अर्थात् बाहर के विषयों को अनुभव करने के लिए, संग्रह करने के लिए दौड़ता रहे फिर आपकी अधोगति हो जाएगी क्योंकि मन जो है–

मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः।

(चाणक्य नीति १३/११)

मन ही आपका प्रबल यन्त्र है। वह चेतना का तीसरे स्तर का प्रवाह है। वह प्रवाह यदि अधोमुखी हो जाए तब तो आपके पतन में कोई संदेह नहीं है और आप इसी संसार में भटकते रहेंगे। कब से भटकते आ रहे हैं पता नहीं कितने जन्म बीत गये? कौन जानता है कि आपका यह व्यष्टिभाव कब से प्रारम्भ हुआ है? यह तो परमात्मा ही जान सकता है। वही कह सकता है –

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन।

(गीता ७/२६)

जो पहले हो गए हैं, अब हैं और आगे होंगे, उन सबको मैं जानता हूँ। अपने को तो पता नहीं कि कब से यह शुरू हुआ है लेकिन जब से शुरू हुआ है तब से अधोमुखी ही चल रहा है। अधोमुखी न चले तो यह दुर्गति क्यों हो? इसी चेतना को ऊर्ध्वमुखी करने के लिए साधना की जाती है।

आप लोगों में से बहुत हैं जो जब हम साधना में थे तब से हमें जानते हैं। कितनी कठोर साधना से अधोमुखी चित्त को ऊर्ध्वमुखी किया जाता है, यह इतना सरल नहीं है। केवल कह देने मात्र से कि चेतना को उर्ध्वमुखी कर लो, नहीं हो जाती। यदि सरल होता तो सभी कर पाते। उपनिषदों में एक मन्त्र में कहा है–

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयंभू–

स्तस्मात्पराङ्पश्यति नान्तरांत्मन्।

विधाता ने इन्द्रियों का मुख बाहर की तरफ तोड़ा है। 'व्यतृण' माने तोड़ना। जैसे अण्डे का मुँह तोड़ करके बच्चा निकलता है ऐसे ही उसने इन्द्रियों के सारे मुँह तोड़े लेकिन बाहर की तरफ। ये बाहर ही देखती हैं अन्दर नहीं देखती। आँख सारी दुनिया को देखने में सक्षम है लेकिन अन्दर उसके क्या हो रहा है, उसको देखने में वह सक्षम नहीं है। कहा फिर देखती भी है कि नहीं? नहीं, देखती है –

कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष–

दावृत्त चक्षुरमृतत्वमिच्छन्।।

(कठ० २/१–१)

कोई धीर पुरुष उस चिदांश को देखता है। धीर माने जिसकी बुद्धि स्थिर है। 'धीः' माने बुद्धि। जिसकी बुद्धि आत्मा को विषय करने वाली है उसको 'धी' कहते हैं। जिसकी बुद्धि संसार को या संसार के विषयों को विषय नहीं

करती, उसको धीर कहते हैं। 'प्रत्यगचैतन्य' आपकी जीवात्मा का इसलिए नाम पड़ा है क्योंकि तत्त्वतः तो वह अनन्त है, उसमें कोई सीमा तो है नहीं लेकिन जब वह बुद्धि के माध्यम से प्रकट होता है तो वह सीमित दिखाई देता है। सीमित दिखाई देने के नाते –

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।

(गीता १३/१६)

भगवान् ने कहा है कि यद्यपि है वह अविभक्त परन्तु सारे प्राणियों में वह विभाजित सा दिखाई देता है। जो नित्य, अनन्त है उसका विभाजन हो नहीं सकता। वह अविभक्त है फिर भी विभाजित वा अलग–अलग ऐसा दिखाई देता है। प्रत्येक व्यक्ति अलग–अलग दिखाई देता है। अलग–अलग आत्मा के नाते नहीं अलग तो चित्त के नाते है इसलिए कोई धीर पुरुष ही उस प्रत्यक् चैतन्य को देखता है। कैसे देखता है 'आवृत्य चक्षुः'– पहले बाहर आँखें बन्द करो। 'चक्षु' माने केवल आँखें नहीं सारी इन्द्रियां। ये बाहर देखने वाली पांचों ज्ञानेन्द्रियां हैं। जब तक बाहर से इनको नहीं समेटोगे, अन्तर्मुखी नहीं होगे, उसे नहीं देख सकते।

आपके उदयपुर में बहुत लोगे ऐसे हैं जो साधना काल से मुझे जानते हैं। उदयपुर हमारी साधना स्थली है, तपस्थली है। जो हमें मिला है यहीं से मिला है, इसी पवित्र भूमि से इसलिए मैं इस भूमि के प्रति सदैव कृतज्ञ रहता हूँ। इसमें बड़ी कठोर साधना करनी होती है, कठोर परिश्रम करना होता है और अपने आपको बाह्यमुखी से अन्तर्मुखी करना होता है। बड़ी शान की बातें कर लो, बड़ी पुस्तकें पढ़ लो, बड़ा लम्बा–लम्बा व्याख्यान दे लो, सुन लो परन्तु उस आनन्द का अनुभव होने वाला नहीं है। एक बार यदि उस आनन्द का अनुभव हो जाए फिर दुनिया में कहीं भी घूमो कोई कुछ नहीं कर सकता। दूध को पानी में मिलादो तो पानी में मिल जायेगा। दूध को पहले गर्म करो फिर जामन लगाकर जमा दो। दही बना लो और दही बना कर उसे मथ लो। मथ कर उसका मक्खन निकाल लो। मक्खन को पानी में डाल दो तो वह कभी भी पानी में नहीं घुलेगा। जैसे दूध से मक्खन निकालने पर पानी उसका कुछ नहीं बिगाड़ता, मक्खन बना रहता है– ऐसे ही आप जब साधना के द्वारा अपनी चेतना को ऊर्ध्वमुखी करेंगे तो फिर उसे संसार में डाल दो, संसार उसका कुछ नहीं करता। हम तो दुनिया के सारे देशों में घूमते हैं। हमें तो देश–विदेश में कोई अन्तर ही नहीं लगा। सब जगह जहाँ गए वहाँ मनुष्य मुझे मिले और मनुष्यों से मेरा सम्पर्क हुआ। वो मनुष्य जिनके माँ–बाप बीफ खाते थे और शराब पीते थे, अब उनके बच्चों के आप देखिए तो सोचेंगे

जैसे भारत के ब्राह्मण हों। उनका मांस छूट गया, मदिरा छूट गई और सिगरेट छूट गया। सारा परिवार साधना में लग गया। उनके जीवन में परिवर्तन आ गया। वो साधना में लग कर आनन्द का जीवन जी रहे हैं। मेरे कहने का अभिप्राय कि आप साधना में लग कर अपने आपको सम्भाल लें। कैसे सम्भाल लें? इसके लिए वेद ने बताया 'आवृतं चक्षुः' बाहर न देख कर आँखें अन्तर्मुखी हो जाएं।

पांचों ज्ञानेन्द्रियों को आँख कहा जाता है। पांचों ज्ञानेन्द्रियां देखती हैं। कोई शब्द को देखता है, कोई रस को देखता है जैसे खट्टा, मीठा आदि कोई गन्द को देखता है जैसे दुर्गन्ध, सुगन्ध। देखने का काम पांचों ज्ञानेन्द्रियां करती हैं इसलिए वेद में पांचों ज्ञानेन्द्रियों को एक शब्द से सम्बोधित किया गया है 'चक्षु'। पांचों ज्ञानेन्द्रियों के मुँह को जो बाहर की तरफ खुलें हैं उनको बंद कर दो तो 'आवृत चक्षु' हो जाएं अर्थात् तब आप अन्तर्मुखी होकर आत्मस्वरूप का साक्षात्कार कर सकते हैं। फिर आपको संसार बाँध नहीं सकता। तुलसीदास जी ने विनय पत्रिका में लिखा है–

जो संतोष–सुधा निसिबासर सपनेहुँ कबहुँक पावै।
तौ कत बिषय बिलोकि झूँठ जल मन–कुरंग ज्यों धावै।।

(वि०प० १६८/२)

संतोष रूपी अमृत रात या दिन में स्वप्न में भी कभी मिल जाए तो आपके मन को संसार का महत्त्वपूर्ण तत्त्व बाँध नहीं सकता अथवा अपने बस में नहीं कर सकता। फिर दुनिया का प्रलोभन आपके लिए व्यर्थ हो जाएगा। नहीं तो छोटी–छोटी चीज़ों के लिए आप दौड़ते रहेंगे, हाय–तोबा करते रहेंगे। हम जब साधना से उठे तो बलवन्त सिंह महता जो उन दिनों चेयरमैन थे, वो मेरे पास आते थे और उन्होंने कहा कि गुरु जी हम आपको मोती नगरी के पास 100 एकड़ जमीन और ढाई लाख रुपया देते हैं। आप यहाँ एक बहुत बड़ा योगाश्रम बनायें। यह आपकी साधना स्थली है इसलिए आप यहाँ एक बहुत बड़ा केन्द्र बनाएं। मैंने कहा कि मैं तो एक जगह नहीं रह सकता। मैं तो घूमता रहता हूँ। जिन्होंने 'नारायण हरि' करने पर मुझे रोटियां दी हैं वो तो मुझे जानते हैं। मैंने कहा कि मैं नारायण हरि करके रोटी खाने वाला व्यक्ति क्या करूंगा जमीन ले करके। मेरा कहने का अभिप्राय कि यदि आपको एक बार भी झलक मिल जाए अन्तर्मुखी होने की फिर दुनिया की कोई शक्ति आपको बांध नहीं सकती। असम्भव है कि बाँधे। बाँधेगा भी कैसे? आपको पता चल जायेगा कि यह संसार जिसके लिए दुनिया मर रही है, यह परमाणुओं का संघात है। ये परमाणु भी

प्रतिपल बदल रहे हैं। जो कुछ परिवर्तनशील है वह आपको शान्ति कैसे देगा। सुख तथा आनन्द कहाँ से देगा? इसलिए आप अपने परिवर्तनशील स्वरूप से नहीं अन्तर से उसमें अवस्थित हो जाइये, आनन्द के सिवाय कुछ है ही नही दुनिया में। शरीर तथा शरीरी का अपना धर्म चलता रहेगा। उस आनन्द में आप निमग्न रहें। बस यह शर्त है कि बाहर से आप अपनी इन्द्रियों को मोड़ने का प्रयत्न करें। ध्यान में बैठो इससे धीरे–धीरे आप अन्तर्मुखी हो जायेंगे नहीं तो लम्बी–2 बातें करते रहो, संसार में भटकते रहो लाभ कुछ नहीं होगा। आप अपने आपको ठग नहीं सकते, दुनिया को भले ठगते रहो। जो अपने आपको नहीं ठग सकता वह भगवान् को कैसे ठगेगा? इसलिए याद रखो भगवान् का यह अमर संदेश है–

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।

(गीता ६/५)

यह मानव जीवन मिला है। जितनी बार जन्मे हो उतनी बार माता, पिता, भाई, पत्नी, पुत्रादि हुए हैं। सूकर–कूकर, कीट–पतंगादि योनियों में से घूम कर आए हैं। उससे अब तक दुःख, पीड़ा और संताप के सिवाय मिला क्या है? कुछ नहीं। मनुष्य योनि में आए और उसमें भी उलझे रहो, कौन बुद्धिमता की बात है? अब अपने आपको सम्भालो और सम्भालकर अन्तर्मुखी होने की कोशिश करो। जो मन नीचे अन्नमय कोश की तरफ दौड़ रहा है उसको मोड़कर विज्ञानमय तथा आनन्दमय कोश की तरफ ले जाओ। एक बार उधर मुड़ जाओ फिर संसार का महत्त्व कुछ नहीं रहेगा। आप सुख के समुद्र में पहुँच जायेंगे और संसार का सारा काम ऐसे चलता रहेगा। आप इसके द्रष्टा बने रहेंगे। जो लोक–कल्याण के लिए उपयोगी होगा उसमें आप लगे रहेंगे। यह आपका जीवन क्रम बन जायेगा।

'उद्धरेत' शब्द का अर्थ होता है 'उत हरेत' माने ऊपर उठाओ नीचे मत जाने दो। जो यह कहते हैं कि महाराज हमारा उद्धार कर दो, उद्धार क्या होता है? कहीं डूब रहे हो कि उसमें से निकालना है। उद्धार माने अपने आपको ऊपर उठाना। उद्धार संस्कृत का शब्द है। उत् और आहरण – उत् माने ऊपर, आहरण माने खींचना। ऊपर उठाने को उद्धार कहते हैं और नीचे गिराने को पतन कहते हैं। अपनी आत्मा को नीचे मत गिरने दो ऊपर उठाने का प्रयत्न करो। इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी वाणी को यहीं विश्राम देता हूँ।

हरि ॐ तत्सत्

उदयपुर
17.03.1998
सायं

२

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

करुणानिधान भगवान् की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यह मेरी आन्तरिक शुभ कामना। दैवी विधान से और विशेष कर भगवान् मारुति की कृपा से कई वर्षों बाद इस पवित्र स्थान पर पुनः हम आप एकत्रित हुए हैं। देश और विदेश के कार्यक्रम में अतीव व्यस्त होने के कारण चाहते हुए भी यहाँ नहीं आ सका। उदयपुर को तो मैं कभी भूल सकता ही नहीं क्योंकि इस पवित्र स्थान पर रह कर मैंने जो कुछ उपलब्ध किया है वही सारी दुनिया में वितरित कर रहा हूँ। वर्ष का आधा तो मेरा दुनिया के देशों में बीत जाता है और आधा भारत के हिस्से आता है। उसमें भी बहुत से यहाँ कार्यक्रम होते हैं।

आजकल अखिल भारतीय संत समिति के नाम की राष्ट्रीय स्तर पर एक संस्था बहुत बड़ी है। उसमें लगभग सभी सम्प्रदायों के दस हज़ार विद्वान् महात्मा एक संगठन के रूप में संगठित हैं। इसमें भी मैं विशेष रूप से सक्रिय होने के नाते व्यस्त रहता हूँ फिर भी प्रभु प्रेरणा से आप लोगों के लिए पाँच दिन का समय निकाल पाया हूँ। आप लोग मेरे विचारों से अवगत हैं तथा और भी अवगत होंगे।

मैं ऐसा समझता हूँ कि इस समय दुनिया में जितनी अशान्ति, अव्यवस्था तथा संघर्ष है यानी सम्पूर्ण रोगों का कारण

मूलतः बौद्धिक अस्थिरता है। यदि मनुष्य अपनी मनुष्यता का थोड़ा सा भी ध्यान रखे और जिसके नाते उसकी विशिष्टता है उसको ज़रा समझ ले तो निःसन्देह इन दुःखों से वह मुक्ति पा सकता है। भारतीय दर्शन ने मनुष्य के लिए एक मुख्य संदेश दिया है और उसमें एक बात बताई है कि मनुष्य केवल पदार्थों का संघात ही नहीं है और न ही वह आत्मा है। हमारे यहाँ कुछ शताब्दियों पूर्व एक भूल हुई कि मनुष्य को केवल आत्मा मान करके उसे आत्मा की उपासना का ही उपदेश दिया गया लेकिन मनुष्य केवल आत्मा का नाम नहीं है। विवेक की दृष्टि से देखा जाए तो आत्मा का कोई नाम हो नहीं सकता। न वह मनुष्य है न पशु है और न पक्षी है। आत्मा की व्याख्या उपनिषदों में समझाई गई है।

अततिव्याप्नोति इति आत्मा।

जो एक रस चैतन्यघन सर्वत्र परिव्याप्त है उसको आत्मा कहते हैं। जो अखण्ड–अनन्त–चैतन्यघन है उसका कोई रूप नहीं है, रंग नहीं, गोत्र नहीं, जाति नहीं तथा आकृति नहीं है। वह तो अनन्त सत्य के सिवा और कुछ नहीं है इसलिए उसको मनुष्य भी नहीं कहा जा सकता। आत्मा की अभिव्यक्ति प्रकृति के माध्यम से हुआ करती है। भारतीय दर्शन इसे स्वीकार करता है।

भारतीय दर्शन के विविध सिद्धान्तों में आरम्भवाद, परिणामवाद, सत्कार्यवाद तथा विवर्तवाद आदि जो वाद हैं, उन वादों में स्वीकार किया गया है कि विशुद्ध चेतन एक अखण्ड अनन्त रूप में है। वह तत्त्वतः आकार रहित है, अज है, शाश्वत है, निर्विकार है लेकिन उसकी अभिव्यक्ति प्रकृति के माध्यम से हुआ करती है। अब वेदान्त में उस प्रकृति को अचिन्त्य शक्ति, सदसद् विलक्षणा, अनिर्वचनीया, ऐसा कहा गया है। सांख्य ने उसे प्रकृति कहा –

प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्।

(यो0 सू0 २/१८)

प्रकाश का 'प्र', क्रिया का 'कृ' और स्थिति का 'ति' मिलकर के बना प्रकृति। 'प्र' माने प्रकाश, 'कृ' माने क्रिया और 'ति' माने स्थिति। Life, movement and stability, these are qualitites of nature. इसलिए नेचर को त्रिगुणात्मक कहा गया है। प्रकृति तीन गुणों वाली है – प्रकाश, क्रिया और स्थिति। यह सांख्य ने कहा है और योग ने भी यही कहा है। न्याय वैशेषिक ने भी इसी भाषा का प्रयोग किया है। इस प्रकार से प्रकृति के माध्यम से अभिव्यक्त होने वाली जो चेतना है, वही अनेक रूपों में परिणत होती है। गीता के चौदहवें अध्याय में भगवान् ने इस सत्य का उद्घाटन करते हुए कहा –

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम्।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत।।

(गीता १४/३)

यह महद् ब्रह्म प्रकृति मेरी योनि है और मैं उसमें गर्भ धारण कराता हूँ यानी परमात्मा अपने दिव्य तेज को उसमें प्रतिष्ठित करता है। जिस समय उस परमात्मा के प्रकाश में प्रकृति प्रकाशयुक्त होती है उसी से सम्पूर्ण जीवों का आविर्भाव होता है। सम्पूर्ण जीवों का आविर्भाव होने के नाते भगवान् ने कहा –

तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता।

(गीता १४/४)

महद् ब्रह्म प्रकृति सारे जीवों की मां है और मैं सम्पूर्ण जीवों का पिता हूँ–

पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।

(गीता ९/१७)

'मैं ही जगत् का पिता और माता हूँ'। मेरा कहने का अभिप्राय कि अब मनुष्य की स्थिति देखिए आप। मनुष्य के मनुष्यत्व का प्रारम्भ प्रकृति और पुरुष के संयोग से होता है। केवल पुरुष मनुष्य नहीं हो सकता, केवल पुरुष तो शुद्ध चेतन है। शुद्ध चेतन की अभिव्यक्ति हो ही नहीं सकती। जैसे हम बिना बल्व के विद्युत का प्रकाश नहीं देख सकते, बिना ईंधन के अग्नि का दर्शन नहीं कर सकते, ऐसे ही बिना प्रकृति के पुरुष की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। आपका व्यष्टिभाव कुछ नहीं है, आपकी बुद्धि के रूप में दिव्य प्रकृति की अभिव्यक्ति है। यह ही विभिन्नता में कारण है। भगवान् ने गीता के तेरहवें अध्याय में बताया है–

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते।

(गीता १३/२०)

कार्य माने शरीर, करण माने इन्द्रियां और कर्तृत्व माने इनकी गति। इस प्रकृति के सारे क्रिया–कलाप का बोध किसको होता है? कहा कि पुरी में विश्राम करने वाला जो चित्तगत चेतन है वही अच्छे और बुरे का अनुभव करता है। प्रतिकूल अनुभूति हुई तो उसको दुःख कह दिया, अनुकूल अनुभूति हुई तो उसको सुख कह दिया। सुख–दुःख का अनुभव करने वाला चिदांश चेतन है।

अब आप समझ गए होंगे कि मनुष्य का स्वरूप, उसका जीवन केवल प्राकृत नहीं है और केवल चेतन भी नहीं है। प्रकृति और पुरुष के संयोग से ही मनुष्यत्व का आविर्भाव हुआ है। केवल मनुष्यत्व का नहीं, सभी प्राणियों का

आविर्भाव प्रकृति और पुरुष के संयोग से हुआ है। जो विज्ञान का विद्वान् है वह यदि इसको अच्छी प्रकार से समझ ले तो उसे बात समझ में आ जायेगी। चेतना की अभिव्यक्ति होती है जन्म नहीं होता क्योंकि वह परमाणुओं का संघात नहीं है। जो संघात है वह घनीभूत हो सकता है लेकिन जो संघात नहीं है वह घनीभूत नहीं हो सकता। ज्ञान को आत्मा का स्वरूप बताया गया है। सांख्य दर्शन केवल उसे ज्ञेय कहता है। ज्ञेय माने ज्ञान स्वरूप। वेद कहता है –

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।

वह सत्य है, ज्ञान स्वरूप है और अनन्त है। तो वहाँ पर Existance, knowledge and infinity are the nature of supreme consciousness. जब आप देखेंगे, समझेंगे तो आपको यह बात समझ में आ जायेगी कि आपका जो व्यक्तित्व है उसका प्रारम्भ चेतन से नहीं होता। चेतन तो एक है, अखण्ड है और अनन्त है। आपके व्यष्टि भाव का कारण आपकी बुद्धि है। सांख्य की भाषा में उसे बुद्धि कहते हैं, योग की भाषा में चित्त कहते हैं और वेदान्त की भाषा में अन्तःकरण कहते हैं। यह भाषा का भेद है तत्त्व एक ही है। गीता ने भी बुद्धि, चित्त तथा सत्त्व, इन तीनों शब्दों का प्रयोग किया है –

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।

(गीता १७/३)

१७वें अध्याय और दूसरे अध्याय में उसे बुद्धि कह करके सम्बोधित किया है। गीता तो सभी दर्शनों का मूलाधार है। इसलिए मैं आप लोगों को बता रहा था कि आपके व्यष्टि भाव के व्यक्तित्व का मूलाधार आपकी बुद्धि है, आपका चित्त है चेतन नहीं। चेतन तो एक है, अखण्ड है, अनन्त है, वह तो सर्वव्यापी है। आपके चित्त में भी वही चेतन प्रकाशित हो रहा है और दूसरे के चित्त में भी वही चेतन प्रकाशित हो रहा है। आप में और दूसरे में जो भेद है वह चित्त के नाते है चेतन के नाते नहीं है। अभी आप ट्यूब के रूप में प्रकाश सफेद देखते हो बाहर जाओगे तो बल्व के रूप में प्रकाश लाल दिखाई देगा तो प्रकाश का कोई रंग है? नहीं। क्या आप विद्युत को बिना रंग के देख सकते हैं? असम्भव है। क्यों? इसलिए कि बिना माध्यम के विद्युत की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती और माध्यम बिना रंग के हो नहीं सकता। वह किसी न किसी रंग का अवश्य होगा। जैसे बिना रंग के बल्ब नहीं होते इसी रूप से बिना रंग का आपको कोई चित्त नहीं मिलेगा क्योंकि वह प्रकृति का परिणाम है। वह प्राकृत है। प्राकृत होने के नाते यदि उसमें सतोगुण की प्रधानता है तो उज्ज्वल होगा, रजोगुण की यदि प्रधानता है तो रक्त

वर्ण होगा और यदि तमोगुण की प्रधानता है तो कृष्ण वर्ण होगा। जैसा आपका चित्त होगा वैसी आपकी बुद्धि होगी, वैसे ही उसका प्रकाश होगा। इसलिए आपकी बुद्धि पर आपके व्यक्तित्व का सारा भार है। भगवान् ने गीता में कहा है कि जिसकी जैसी बुद्धि है वह वही है– **यो यच्छ्रद्धः स एव सः।** (गीता १७/३) उसके अतिरिक्त उसका कोई अस्तित्त्व नहीं है। आपके व्यक्तित्व और आपके कर्तृत्व का आधार बुद्धि है। मनुष्य का अस्तित्त्व, व्यक्तित्व और कर्तृत्व बुद्धि पर अवलम्बित है इसलिए आपकी बुद्धि उत्तम होनी चाहिए।

रातों–दिन व्यक्ति सुख के लिए दौड़ रहा है। सुख हमारी आन्तरिक चाह है। हम असीम सुख की चाह रखते हैं। जब बच्चा पहली क्लास में पास होता है तो बड़ा प्रसन्न होता है। जब दूसरी क्लास का पेपर सामने आता है तो फिर रोना शुरू कर देता है। कितनी बार सुखी हुए होंगे? जितने साल पढ़ते रहे और पास होते रहे। सुख की अनुभूति तो होती ही रहती है लेकिन कब तक रहती है? जब तक आगे वाला पहाड़ नहीं आया। एक पहाड़ी पार किए तो सोचा कि पहुंच गए। जब आगे बड़े तो पहाड़ और दिखाई दिया। फिर होता है कि चढ़ाई चड़ना पड़ेगा। यह स्थिति होती है लेकिन जिस सुख की कामना हमारे अन्तर में है उसकी उपलब्धि नहीं होती। भगवान् ने कहा कि–**अशान्तस्य कुतः सुखम्।** (गीता २/६६) जहाँ अशान्ति है वहाँ सुख कहाँ? अशान्ति कैसे दूर हो? भगवान् ने कहा कि अशान्ति दूर करने के लिए तो भावना की आवश्यकता है। भावना कैसे आवे? बुद्धि से।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।

(गीता २/६६)

ये दो बातें भगवान् ने कही हैं। दुनिया में मैं जहाँ घूमा हूँ, कहीं हमें ऐसा मनुष्य नहीं मिला जिस मनुष्य के पास दो के सिवा कोई तीसरा साधन हो। प्रत्येक मनुष्य में मुझे दो चीज़ें मिलीं – बुद्धि और हृदय– या तो आप बुद्धि प्रधान हैं या हृदय प्रधान हैं। यदि आप बुद्धि प्रधान हैं तो आप प्रत्येक बात को तर्क की दृष्टि से देखेंगे। यदि आप हृदय प्रधान हैं तो आप अन्धे की तरह कूद पड़ते हैं उसी पर। जहाँ आपको भाव आया वहीं कूद गये। आपने देखा नहीं कि सही है या गलत है। मनुष्य के जीवन में ज्यादा करके जो रोग होता है वह भावना के नाते होता है। बौद्धिक रोग भी होता है।

अथर्ववेद में अथर्वा ऋषि हुए हैं जिन्होंने एक ऐसी विद्या का आविर्भाव किया जिस विद्या ने हृदय और बुद्धि को आपस में सी दिया। पूछा गया कि उस

विद्या का क्या नाम है जो हृदय और बुद्धि को आपस में सी देती है या एक कर देती है? ऋषि ने बताया कि उस विद्या का नाम है योग। योग ही एक ऐसी विद्या है जिसके द्वारा मनुष्य अपने हृदय और बुद्धि को जोड़ देता है।

बुद्धि का देवता सूर्य है और हृदय का चन्द्रमा है। जब लड़का पैदा होता है तो जन्म कुण्डली बनाई जाती है। यह देखा जाता है कि किस भाव में सूर्य है और किस भाव में चन्द्रमा है। देखने से पता चलता है कि यह व्यक्ति भावुक होगा या बुद्धिमान् या दोनों का समन्वय? बुद्धि और हृदय का समन्वय स्वाभाविक नहीं होता, करना पड़ता है। उसके लिए साधना है। हृदय और बुद्धि से युक्त हो करके ही मनुष्य सत्य की अनुभूति कर सकता है अन्यथा नहीं। यहाँ पर भगवान् ने एक ही श्लोक में दो बातें कही हैं –

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।

यह भावना किसकी सम्पत्ति है? हृदय की। भगवान् कहते हैं कि जो युक्त नहीं है उसमें न बुद्धि होती है न भावना होती है। दोनों नहीं होते। भावना और बुद्धि जब दोनों हो जायें तो मनुष्य का उत्थान होता है; बुद्धि और हृदय दोनों को उन्नत करने के लिए आपको युक्त बनना पड़ेगा। युक्त किसे कहते हो?

युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः।

(गीता ६/८)

जिस योगी को पत्थर, मिट्टी और सोना एक समान दिखाई देने लगे ऐसे योगी को युक्त कहते हैं। यह नहीं कि वह सोने को मिट्टी देखता है। सोने को मिट्टी देखने का अभिप्राय यह है कि जैसे उसकी दृष्टि में मिट्टी का मूल्य है ऐसे सोने का मूल्य है यानी वह लोभ मुक्त, राग रहित और कामना शून्य हो जाता है। ये सब मिट्टी के ही परिणाम हैं, ऐसा वह जानता है। सोना भी तो मिट्टी का परिणाम है। वह भी तो धातु ही है न। जब मिट्टी के परिणाम को वह कारण रूप में देखने लगा तो योगी बन गया और यदि कार्य रूप में देखने लगेगा तो भोगी बन जायेगा।

जीवन के दो ही रास्ते हैं याद रखना या तो योगी बनो या भोगी। जब तक भोगी का जीवन जी रहे हो तब तक तुम्हें न शान्ति मिलेगी न सुख मिलेगा। योगी और भोगी कैसे बना जाता है? जब आप अनेक सत्ता को स्वीकार करते हैं तो आप भोगी हैं। जब आप अनेकता में एकता का साक्षात्कार कर लेते हैं तो आप योगी हैं। अनेकता को सत्य मानकर उसी के पीछे दौड़ने वाला भोगी है। भगवान् ने कहा कि यदि तुम सुख चाहते हो तो तुम्हारे अन्दर शान्ति होनी चाहिए। सुख तो शान्ति का प्रकाश है और शान्ति तब मिलेगी जब तुम्हारी बुद्धि और हृदय

दोनों युक्त हो जाएंगे। युक्त माने परमात्मा से जुड़ जायेंगे।

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः।।

(गीता १२/८)

पहले मन को मेरे में रख दे फिर बुद्धि को तू मेरे में रख दे, इससे तुम मेरे में ही प्रवेश करोगे, इसमें कोई संदेह नहीं है। वेद का एक मन्त्र है जो मुझे बहुत प्रिय है। उसमें एक बात बताई गई है कि लोग कहते हैं कि शरीर नाशवान् है, संसार नाशवान् है और यह सब कुछ अनित्य है लेकिन इस नाशवान् के द्वारा हमें अविनाशी को पाना है। जिन लोगों ने अब तक अविनाशी की अनुभूति की, कैसे की? नाशवान् के द्वारा ही अविनाशी की अनुभूति होती है। तुलसीदास जी ने कहा –

तन बिनु भजन बेद नहिं बरना।।

(रा० ७/९६–५)

बिना शरीर के कहीं मुक्ति होती है? योग की साधना हो जायेगी क्या? नहीं।

हम जब यहाँ उदयपुर में कठोर साधना में बैठे थे तो धर्मनारायण और लाल सिंह जी शक्तावत मेरे पास रहते थे। उन दिनों भी शरीर की सम्भाल के लिए गाय का दूध ये लोग खिड़की से रख देते थे क्योंकि मैं बाहर नहीं निकलता था, अन्दर ही रहता था। कोई मुझे नहीं देखता था और मैं किसी को नहीं देखता था। इन लोगों से मैंने कह रखा था कि यदि दो–चार दिनों तक मैं दूध न उठाऊँ तो घबराना नहीं। जब एक सप्ताह पूरा हो जाए, दूध न उठाऊँ तब किबाड़ खोल लेना तुम। दूध न उठाऊँ का अभिप्राय कि अपने बस में न रहूँ। पहले जब मैं उस अवस्था में पहुँचा तो दो दिन दूध वहीं पड़ा रहा। तीसरे दिन 72 घण्टे के पश्चात् जब मुझे होश आया तो मैंने सोचा कि ऐसा न हो बेचारे रोना शुरू कर दें। मैंने कागज़ उठाकर एक लाईन मुश्किल से लिखी अपनी होश में कि मैं ठीक हूँ, मां की कृपा है। इतना लिख कर वहीं रख दिया जहाँ दूध रखते थे और फिर मैं बेहोश हो गया।

मेरे कहने का अभिप्राय कि शरीर की आवश्यकता तो होती है न! साधना तो शरीर से होती है इसलिए वेद में इस शरीर को बहुत महत्त्वपूर्ण बताया गया है। यह शरीर नरक है, नरक का द्वार है, यह तो बुद्धि भ्रमित लोगों की धारणा बनी। वेद में तो जानते हो क्या बताया गया है?

अष्टा चक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।

यह आठ–चक्रों से युक्त नौ दरवाज़ों वाली देवताओं की नगरी अयोध्या है। इसी अयोध्या में –

तस्यां हिरण्यय कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।

(अथर्व0 १०/२–३३–३)

इसी अयोध्या के हिरण्यमय कोष में परम ज्योति स्वरूप राम विराजते हैं। यह अथर्ववेद का मन्त्र है। यह अयोध्या देवताओं की नगरी है। यह आठ चक्रों वाली है। आठ चक्र हैं – ब्रह्म चक्र, आज्ञा चक्र, ललना चक्र, विशुद्ध चक्र, अनाहत चक्र, मणिपुर चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र तथा मूलाधार चक्र। यह आपका शरीर आठ चक्रों और नौ दरवाज़ों वाली देवताओं की नगरी है। इससे पवित्र स्थान और दुनिया में कहाँ हो सकता है? इसी पवित्र स्थान में परमात्मा का निवास है।

तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।

हिरण्यमय कोष जिसे ब्रह्मचक्र कहते हैं, वह 'ज्योतिषावृतः' परम चैतन्य के प्रकाश से आवृत है। यह आपका शरीर इतना सुन्दर स्थान है लेकिन है तो नाशवान्, है तो परिवर्तनशील। इसके लिए अब मैं आपको दूसरा मन्त्र बता दूं। वेद कहता है –

जानाम्यहँ शेवधिरित्यनित्यं
न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्।

ऋषि कहता है मैं जानता हूँ कि इस अनित्य शरीर की सेवा में यदि लग गया, उपासना में लग गया, इसी के सेवन में रम गया तो 'न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्' तो इस नाशवान से अविनाशी को मैं प्राप्त नहीं कर सकता। ऐसा जानते हुए मैंने एक अद्‌भुत विद्या प्राप्त की है –

ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्निः–
अनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम्।।

(कठ0 १/२–१०)

वो कौन सी विद्या है? कहा कि वह 'चितोऽग्निः' विद्या है जिसको योग विद्या कहते हैं। उससे क्या लाभ हुआ? वो कहता है कि उस विद्या के प्रकाश से इन अनित्य पदार्थों के द्वारा मैंने नित्य पदार्थों को पा लिया। इतनी महिमा है इस शरीर की। वेद, उपनिषद् तथा गीता आदि जितने ग्रन्थ हैं सभी ग्रन्थों में मनुष्य के लिए यह सन्देश दिया गया है कि यदि तुम अपने जीवन को उन्नत बनाना चाहते हो, अपने जीवन में सुख–शान्ति की प्रतिष्ठा चाहते हो तो तुम्हारे लिए एक ही रास्ता है, वह है योग का मार्ग। योग के मार्ग का अभिप्राय यह नहीं कि सब

लाल कपड़े पहनो और भीख मांगो। योग मार्ग में चलने वाले भारत के बड़े–2 सम्राट हुए हैं। भारत के सम्राटों की कहानियां आप उपनिषदों में पढ़िए।

महाराज अश्वकेतु नाम का एक राजा है। उसके पास ऋषि लोग आते हैं। ऋषियों से वह प्रार्थना करता है कि आप मेरे राज्य में निवास करें। मैं जानता हूँ कि आपके निवास करने योग्य स्थान कैसा होना चाहिए। जैसा आपके निवास करने योग्य स्थान होना चाहिए ऐसा ही मेरा राज्य है। कैसा है आपका राज्य? ऋषि के समक्ष राजा की घोषणा है –

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतो।

(छान्दोग्य0 ५/११–५)

मेरे राज्य में कोई चोर नहीं, कंजूस नहीं, मदिरा पीने वाला नहीं, अयाज्ञिक नहीं और मूर्ख नहीं है। आखिर में कहता है –

न स्वैरी स्वैरिणी कुतो।

मेरे राज्य में जब कोई व्यभिचारी पुरुष ही नहीं है तो व्यभिचारिणी स्त्रियां कहाँ से हो सकती हैं? भारत का सम्राट अश्वकेतु यह ऋषियों के सामने प्रतिज्ञा करता है। महाराजा जनक का नाम तो आप लोगों ने सुना होगा? भगवान् ने स्वयं उदाहरण रूप में उनको उद्धृत किया है।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।

(गीता ३/२०)

मेरे कहने का अभिप्राय कि प्रत्येक मनुष्य या तो योगी होगा या भोगी होगा। दोनों के बीच का तो कोई रास्ता ही नहीं है। या तो आपका मन नीचे गिरेगा या ऊपर रहेगा। बिना आधार के तो रह ही नहीं सकता। मैं आपसे इसीलिए निवेदन कर रहा था कि आप सुख से जीवन जीने के लिए योग मार्ग का अवलम्बन लें। सब के लिए आवश्यक नहीं कि सभी बैठ करके कठोर साधना करें जो मैंने की है या मेरे जैसे लोग करते हैं।

योग एक जीवन की प्रक्रिया है और भोग भी एक जीवन की प्रक्रिया है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी रुचि के अनुसार इन दोनों में से एक रास्ता अपना सकता है। योग का रास्ता सरल है या कठिन है? मेरे से यदि पूछो तो मैं कहूँगा कि इससे सरल कोई और रास्ता हो ही नहीं सकता क्योंकि भोग के रास्ते में मनुष्य पराधीन होता है और योग के रास्ते में मनुष्य स्वाधीन होता है। स्वाधीनता आपके लिए सरल है या पराधीनता? बात यह है कि इस देश के निवासियों को गुलामी की

आदत पड़ गई है। सदियों से पराधीन रहते आए हैं इसलिए स्वाधीन रहने का उनके रक्त में शायद संस्कार ही नहीं बना। अभी अंग्रेज़ियत की इतनी गुलामी अब भी संस्कार रूप से पड़ी हुई है कि भारत में कोई उनको दिखाई ही नहीं देता जो इस देश को चला सके। भारत तो बुद्धि और योग्यता का केन्द्र है। यहाँ की योग्यता के गीत आज भी विदेशी लोग गाते हैं। अमेरिका में इस समय हमारे लाख से अधिक वैज्ञानिक विद्वान् काम कर रहे हैं और ऊँचे-2 पदों पर अनुसंधान कर रहे हैं। भारतीय बौद्धिक क्षमता का लोहा इस समय दुनिया के लोग मान रहे हैं लेकिन इस देश के निवासियों में गुलामी के कुसंस्कार इतने दृढ़ हो गए हैं कि उनको अपने देश को चलाने के लिए कोई दिखाई नहीं दे रहा कि यहाँ कोई योग्य व्यक्ति भी है। यह बौद्धिक दिवालियापन नहीं तो और क्या कहा जाए।

याद रखो मनुष्य के जीवन की महत्ता परतंत्रता में नहीं है स्वाधीनता में है।

पराधीनता दुःख महा सुखी जग में स्वाधीन।

यह हमने बच्चेपन में एक लाईन पढ़ी थी। श्रीमद्भागवत का एक श्लोक है –

सर्वं परवशं दुःखं सर्वे आत्मवशं सुखम्।

सारे दुःख परतन्त्रता में हैं और सारा सुख स्वतन्त्रता में। उस परतन्त्रता का अर्थ हमारे यहाँ दर्शन शास्त्र से लिया गया है। यदि आप प्रकृति के अधीन होते हैं तो आप परतन्त्र हैं और यदि आप आत्मस्थ होते हैं तो आप स्वतन्त्र होते हैं। ऋग्वेद में इसके लिए एक अलग सूक्त है, उसका नाम है 'स्वराज सूक्त'। तैत्तिरियोपनिषद् में ऋषि कहता है –

आप्नोति स्वराज्यम्।

कि जो योग के द्वारा आत्मस्थ हो जाता है वह स्वराज्य को प्राप्त कर लेता है। योगमार्ग का जीवन अपनाने से आप स्वराज्य को प्राप्त कर सकते हैं। योग गृहस्थी में बाधक नहीं है। आप गृहस्थ रहिए। अब तो सरकार ने प्रतिबन्ध लगा दिया है हम दो हमारे दो। हम दो एक हमारे एक। हमारे ऋषि हुए हैं जिनका नाम था वसिष्ठ। वे भगवान् राम के गुरु थे। उनके 100 पुत्र थे। थे वे महायोगी। योगवासिष्ठ उनका प्रवचन है।

मेरा कहने का अभिप्राय कि गृहस्थाश्रम हो या विरक्ताश्रम योग से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। योग तो एक जीवन की विधा है। उस विधा में केवल दो बातें समझाई गई हैं कि आप अपने जीवन की महत्ता किससे आँकते हैं?

प्राकृतिक पदार्थों से आप अपने आपको विभूषित करना चाहते हैं या आपसे प्रकृति विभूषित होती है? आपने बहुत सुन्दर मकान बनाया तो मकान से आपकी महत्ता है या आपसे मकान की महत्ता है? यहाँ तो उलटा होता है। उसका बहुत बड़ा मकान है इसलिए वह बहुत बड़ा आदमी होगा। इसे क्या कहते हैं? इसे बुद्धि की विकृति कहते हैं। व्यक्ति से मकान की शोभा है न कि मकान से व्यक्ति की। व्यक्ति से धन की शोभा है न कि धन से व्यक्ति की। तुलसीदास ज़ी ने एक चौपाई लिखी है –

बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी।।

(रा० ५/२३–४)

एक नारी को नख से सिख तक आभूषण पहना दिए जाएं लेकिन वस्त्र न पहनाए जाएं, क्या शोभा होगी उसकी? तुलसीदास जी कहते हैं कि परमात्म निष्ठा वस्त्र हैं और दुनिया का वैभव भूषण हैं। सारा वैभव मिल जाए और परमात्म निष्ठा, आत्म निष्ठा न हो तो सब बेकार है। योग मार्ग आत्म निष्ठा का मार्ग है। इसकी वृहद् व्याख्या अभी चार दिन तक सुबह और शाम मैं आप लोगों को सुनाऊँगा।

हरि ॐ तत्सत्

उदयपुर

18.03.1998

प्रातः

३

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

करुणानिधान भगवान् की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यह मेरी आन्तरिक शुभ कामना। कल मैंने आप लोगों को एक बात समझाई थी कि जीवन की दो विधाएँ हैं–योगात्मक और भोगात्मक। जहाँ पर अपने कारण में अवस्थित होकर अनन्तानुभूति की अभिलाषा हो और उसमें एक रस अखण्ड अनन्त आनन्द प्राप्त करने की जिज्ञासा हो, उसे योग कहते हैं। विजातीय पदार्थ क्या हैं? प्रकृति। प्रकृति विजातीय तत्त्व है। परम चैतन्यघन सजातीय तत्त्व है। वह कारण है। किसका कारण है? चेतन का। जो चिदांश आपके शरीर में अवस्थित है उस चिदांश का वह कारण है। जब आपको अपने अंशी में अवस्थित हो इससे युक्त होकर अखण्डानन्द को प्राप्त करने की अभीप्सा होती है तब आप योग मार्गी बन जाते हैं। जब तक आप में प्रकृति के पदार्थों के संयोग की चाह बनी रहती है तब तक आप भोग मार्गी बने रहते हैं। भोग शब्द का अर्थ संग्रह अथवा ग्रहण नहीं होता बल्कि अनुभूति होता है। यह अनुभूति जब प्रकृति के पदार्थों के साथ जुड़ जाए तो आपको भोगी बना देती है और जब आत्मा के साथ जुड़ जाए तो आपको योगी बना देती है। जिस समय आप योगी बनते हैं उस समय प्रकृति नहीं रहती, ऐसी बात नहीं, आप प्रकृति का

प्रयोग नहीं करते, ऐसी बात भी नहीं है, आप प्रकृति का प्रयोग भी करते हैं, प्रकृति की स्थिति भी रहती है, उसको जानते भी हैं लेकिन आप इस सत्य से अवगत रहते हैं कि मेरे सुख में, मेरी महत्ता और मेरी स्थिति में प्रकृति हेतु नहीं है। मेरी सत्ता, महत्ता और स्थिति में कारण अनन्त चैतन्यघन है, वह ही हेतु है। उसे आप ब्रह्म कह दो, परमात्मा कह दो, ईश्वर कह दो अर्थात् कोई भी नाम दे दो कोई अन्तर नहीं पड़ता। अब इसमें बदला क्या है? दृष्टिकोण। जब प्रकृति से आप सुख की अकाँक्षा करते हैं तो आपको परतन्त्र होना पड़ता है। यहीं से व्यष्टिवाद शुरू होता है। हमारे यहाँ सांख्य दर्शन में इसका विश्लेषण किया गया है। यह व्यष्टिवाद कहाँ से शुरू होता है?

जब चेतन प्रकृति के साथ तादात्म्य होता है, उसमें आत्मबुद्धि कर लेता है, उसी को अपने अस्तित्त्व का आधार मान लेता है, वहीं से व्यक्तिवाद शुरू हो जाता है। जहाँ वह सीमा में बँधा वहीं से उसमें अभाव की अनुभूति होगी। अज्ञान, अभाव और मृत्यु, इनका आपस में घनिष्ट सम्बन्ध है। चिदांश ने अपने आपको उस सीमित चित्त वा बुद्धि में आबद्ध कर दिया। आबद्ध क्यों कर दिया? कहा कि इसी का नाम तो अज्ञान है। इसी को अविद्या कहते हैं। यह अविद्या और अज्ञान ही चित्त में आत्मबुद्धि के हेतु हैं। चित्त में जब आत्म बुद्धि हो गई तब उसमें अभाव की अनुभूति होने लगी क्योंकि जहाँ सीमा है वहीं अभाव है। जहाँ अभाव की अनुभूति है वहीं पर अनेक प्रकार की कामनाएँ उत्पन्न होने लगीं कि इसको कैसे पूरा किया जाए। अभाव को बिना पूर्ण किए कोई मिटा नहीं सकता। वह अभाव कभी पूर्ण होगा नहीं जब तक कि वह सीमा में बँधा रहेगा। जो सीमित है वह नाशवान् है इसलिए वहाँ पर मृत्यु का भय खड़ा हो गया। तो अज्ञान, अभाव और मृत्यु का भय, ये तीनों एक साथ आ गए और वहीं से सारा चक्र शुरू हो गया जन्मने–मरने का जिसे लाख चौरासी कहते हैं। वहाँ पर यह बात समझाई गई कि यदि तुम मृत्यु से डरते हो तो उस से बचने के लिए उपाय ढूंढो। बड़ी तपस्या करने के पश्चात् रावण ने भगवान् से क्या मांगा?

हम काहू के मरहिं न मारे। बानर मनुज जाति दुइ बारे।।

(रा0 १/१८–४)

हम अमर हो जाएं। सारी तपस्या का परिणाम क्या मांगा? हम अमर हो जाएं। हमें मनुष्य और बंदर के सिवा कोई न मारे क्योंकि रावण मनुष्य और बंदर को कुछ नहीं समझता था। वो मरने से भयभीत था, तपस्या के बदले में केवल अपने लिए मृत्यु से बचने का वरदान मांगा। जब ब्रह्मा जी विभीषण के पास गए

और उससे कहा, पुत्र! वर मांगो! तुलसीदास जी लिखते हैं –

गए बिभीषण पास पुनि कहेउ पुत्र बर मागु।
तेहिं मागेउ भगवंत पद कमल अमल अनुरागु।।

(रा० १/१७७)

विभीषण से जब कहा कि तुम वरदान मांगो तो वह कहता है कि हमें तो कुछ नहीं चाहिए। मेरा तो परमात्मा के चरणों में अखण्ड अनुराग हो। जिसने परमात्मा के चरणों में अखण्ड अनुराग मांगा वो तो अमर हो गया और जो मरने के भय से अमर होने की चाह प्रकट किया वह मार दिया गया। कारण क्या? कारण यह है कि विभीषण ने जीवन के स्त्रोत जो परमात्मा हैं उनसे युक्त होने का वरदान मांगा कि मैं हमेशा उनसे जुड़ा रहूँ। परमात्मा के चरणों में अनुराग का अर्थ क्या होता है? परमात्मा कोई व्यक्ति तो है नहीं जिसके चरण हैं, हाथ हैं कि उससे आप प्रेम करो। परमात्मा के चरणों में अनुराग का अर्थ होता है –

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतम्दिवि।।

(पु० सू० ३)

परमात्मा के एक चरण से यह सारा विश्व प्रकट हुआ है और उसका त्रिपाद अमृत स्वरूप है। उस अमृत स्वरूप में जो अनुराग की याचना करेगा वह अमर हो जाएगा क्योंकि उसकी मृत्यु का भय ही समाप्त हो गया, उसका तो व्यष्टि भाव ही समाप्त हो गया। वह अब चित्तस्थ नहीं है आत्मस्थ हो गया। जो आत्मस्थ है उसको कौन मार सकता है? वो तो अमर है।

न जायते म्रियते वा कदाचि–
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो–
न हन्यते हन्यमाने शरीरे।

(गीता २/२०)

शरीर के नाश होने पर भी उसका नाश नहीं होता, वह तो अविनाशी है। अविनाशी का नाश तो कभी हुआ ही नहीं इसलिए जिसने यह मांगा कि मेरा परमात्मा के चरणों में अनुराग हो वह तो अमर हो गया और जो यह मांगा कि हम किसी से न मारे जाएं वह मार दिया गया। यह है ज्ञान और अज्ञान की परिणति का अन्तर।

अब आप देखिए जिस समय आप चित्त से युक्त हुए, तादात्म्य हुए वहीं से आप में अभाव और मृत्यु का भय, इन दो का जन्म हुआ। आप एकान्त में बैठ

कर सोचें, जितना प्रयत्न आप करते हैं या दिन भर जो काम करते हैं उसमें केवल दो ही उद्देश्य होते हैं या तो आप अपने अभाव की पूर्ति करते रहते हैं या मृत्यु से बचने का तरीका ढूंढते रहते हैं। दुकान पर बैठते हैं, व्यापार करते हैं, पैसा कमाते हैं, जो कुछ करते हैं, सारे कर्तृत्व के केवल वही दो ही उद्देश्य हैं– अभाव की पूर्ति और मृत्यु से बचाव। अब इन दोनों से बचने के लिए जो कुछ आप करते हैं तो क्या उससे बच जाते हैं? नहीं बचते। अभाव की पूर्ति के लिए जन्म भर मेहनत करते रहे लेकिन अभाव बना ही रहा। अभाव का अभाव तो नहीं हुआ न? मृत्यु से भयभीत होकर बचने की कोशिश करते रहे आखिर राम नाम सत् हो ही गया। सारा प्रयत्न आपका व्यर्थ चला गया। क्यों? इसलिए कि अभाव का जो कारण है, मृत्यु का जो कारण है उसको तो आपने दूर किया नहीं। जिस दिन उसे दूर कर देंगे आप अभाव और मृत्यु के भय से मुक्त हो जायेंगे।

एक बात और याद रखो यह जो अभाव और भय हैं, इन दोनों से आप मुक्त हो सकते हो। ऐसा नहीं कि आप इनसे मुक्त नहीं हो सकते। जहाँ आपका दृष्टिकोण बदला आप मुक्त हो सकते हैं। दृष्टिकोण क्या बदला? प्रकृति के पदार्थों से हमारी सत्ता और महत्ता नहीं है, यह दृष्टिकोण बदल जाए। हमारी सत्ता और महत्ता में हेतु प्राकृतिक पदार्थ नहीं बल्कि हम स्वयं हैं–

अरब खरब लो द्रव्य हो, उदय अस्त लो राज।
तुलसी जो निज मरन है, तो आवै केहि काज।।

सोचो! उदय–अस्त तक आपका राज्य हो और असीम धन हो आपके पास लेकिन यदि मृत्यु सामने खड़ी हो जाए तो वह सारा लेकर आप क्या करेंगे? यदि आप आत्मस्थ हैं, आत्म स्वरूप में स्थित हैं और आपके पास कुछ नहीं है तो दुनिया का कोई व्यक्ति आपको दरिद्र कह सकता है क्या ? नहीं कह सकता क्योंकि दरिद्री तो वह है –

यस्य विशाल तृष्णा।

आपकी तृष्णा तो समाप्त हो गई –

चाह गई, चिंता मिटी मनुआ बेपरवाह।
जाको कछु न चाहिए सो शाहन को शाह।।

वो कहता है कि मैं विश्व का सम्राट हूँ। सम्राट के पास तो सेना होती है। कहा कि सेना तो उसके पास होती है जिसका कोई शत्रु हो। मेरा तो कोई शत्रु ही नहीं है, सेना क्या करूँगा लेकर। सम्राट के पास तो खजाना होता है। कहा कि विश्व का सारा वैभव मेरा अपना ही तो है। अरे खाने के लिए दो रोटी, पहनने के

लिए दो कपड़े और सोने के लिए दो गज जमीन, यही तो तुम्हें चाहिए। यह तुम भी ले रहे हो हम भी ले रहे हैं, अन्तर क्या पड़ता है? केवल सोच की बात है। विचार बदल गया तो जीवन बदल गया इसीलिए वैदिक ऋषि ने निर्देश दिया है–

तमसो मा ज्योतिर्गमय। असतो मा सद्गमय।

मृत्योर्माऽमृतं गमय।

(बृहदारण्यक १/२–२८)

ये तीन वाक्य बृहदारण्याकोपनिषद् के हैं। ये श्रुति के वाक्य हैं। तीन वाक्यों में सारा रहस्य बता दिया। कहा कि यह जो तो तुम्हारे जीवन में अज्ञान है, इस अज्ञान से तुम प्रकाश में आओ। अज्ञान से जब तक तुम प्रकाश में नहीं आओगे तब तक तुम उस कारण को ढूंढ नहीं पाओगे जिसके नाते तुम्हारे जीवन में दो चीज़ें हैं अभाव और मृत्यु का भय। अभाव क्यों हैं? असत् में आसक्ति से अभाव उत्पन्न हुआ है। असत् माने परिवर्तनशील प्रकृति। प्रकृति में आसक्ति से तुम्हें अभाव अनुभव हो रहा है। तुम्हारे पास क्या नहीं है? प्रकृति का अमुक पदार्थ नहीं है। तो प्रकृति के पदार्थों का ही अभाव है न? प्रकृति के पदार्थ तो सम्पूर्ण रूप से किसी के पास नहीं हैं केवल परमात्मा के पास हैं। किसी के ऊपर परमात्मा का प्रभुत्व है नहीं इसलिए असत् में आसक्ति ही तुम्हारे जीवन में अभाव को जन्म दिए हुए है इसलिए ऋषि कहता है –

असतो मा सद्गमय।

असत् का त्याग करके सत् तत्त्व में अवस्थित होने का प्रयत्न करो। आतमस्थ रूप में अवस्थित होने का प्रयत्न करो। यदि ऐसा हो जाए तो क्या होगा? फिर तो– **मृत्योर्माऽमृतं गमय।**

तीसरा वाक्य सार्थक हो जायेगा। असत् में आसक्ति ही मृत्यु में कारण बनी है। मृत्यु आत्मा की तो नहीं होती शरीर की होती है। मरा कौन? शरीर। संस्कृत में एक शब्द है देह। आप लोग प्रयोग करते हो मेरी देह तेरी देह। गृह शब्द को अर्थ होता है – गृह उपचै। व्याकरण में गृह धातु है जिसका अर्थ होता है 'उपचैः'। उपचै माने होता है संघात। यह देह परमाणुओं का संघात है। जो संघात है, अनेक पदार्थों से मिलकर बना है, वह तो एक दिन बिखरेगा। दुनिया की कोई ताकत उसे हमेशा नहीं रख सकती है। वह तो बिखर रहा है। यह नहीं कि एक दिन बिखरेगा, प्रति क्षण आपका शरीर परिवर्तित हो रहा है। पुराने परमाणु जा रहे हैं और उसके स्थान पर नए परमाणु शरीर में प्रवेश कर रहे हैं। यदि ऐसे न होता तो बच्चे से जवान और जवान से बूढ़ा कैसे होता? यह परिवर्तन

का ही तो परिणाम है। मृत्यु तो प्रतिपल हो रही है। जिस दिन कहते हो मर गया उस दिन मृत्यु नहीं हुई मृत्यु का अंत हो गया। मरने का अन्त हो गया और वे कहते हैं कि देहान्त हो गया। देहान्त माने 'देह उपचै:' जो संघात बनता–बिगड़ता था वह अब बनना–बिगड़ना बंद हो गया। अब बिगड़ गया तो बिखर गया यानी संघात जो पदार्थों के संगठन से बना हुआ था वह बिखर गया, अब नहीं बन रहा। क्यों नहीं बन रहा? कहा कि जिस चेतन के प्रकाश में ये परमाणु संघटित होकर एक आकृति में परिणत हो रहे थे वो चेतन उसमें से निकल गया। जब निकल गया तो वहाँ बिखराव प्रारम्भ हो गया। मृत्यु तो है ही। मृत्यु तो पहले भी हो रही थी। यह जो अभाव और मृत्यु का भय और इन दोनों का कारण एक बन गया। यदि आप इन दोनों के कारण से मुक्त होना चाहते हैं तो असत् से आसक्ति हटा दीजिए लेकिन जब तक अज्ञान बना रहेगा आसक्ति हटेगी कैसे? कारण के होते कार्य कभी नष्ट नहीं होता। जब तक अज्ञान बना रहेगा, चित्त में या बुद्धि में तादात्म्य भाव बना रहेगा तब तक इससे मुक्ति नहीं हो सकती। तादात्म्य भाव को हटाने के लिए ही यह सारा प्रयत्न है। उसके रास्ते को कहते हैं योग मार्ग। इस योग मार्ग में आप कब चलेंगे? जब भोग से अरुचि होगी तब।

भोग की निस्सारता आपके दिमाग में बैठ जाए, भोग की मूल्यहीनता आपके दिमाग में बैठ जाए तो आपकी अपने आप योग में परिणति हो जाएगी क्योंकि दो ही रास्ते हैं तीसरा कोई रास्ता है ही नहीं। इन दोनों में से एक ही रास्ते पर आप चल सकते हैं। यदि आप योग के रास्ते पर चलेंगे तो क्या होगा? फिर तो प्रकृति के पदार्थों का आप सही प्रयोग करेंगे। जब तक आप भोग मार्ग पर चलते हैं तब तक प्रकृति के पदार्थों का आप सही प्रयोग नहीं कर पाते क्योंकि आप आसक्तिवश उसको पकड़े रखना चाहते हैं। पकड़ने से वह पकड़ में आने वाली है नहीं क्योंकि वह प्रतिपल परिवर्तन होने वाली है। आपकी मुट्ठी में यदि प्रकृति आ भी जाए तो आप यह सोचेंगे कि इसको मैं पकड़े रखूँ और थोड़ी देर बाद जब मुट्ठी खोलेंगे तो वहाँ कुछ नहीं मिलेगा क्योंकि प्रकृति का स्वभाव ही विलक्षण है। शंकराचार्य जी ने कहा है –

सदसद् विलक्षणा अनिर्वर्चनीया।

यह न सत् है न असत् है, यह विलक्षण है, अनिर्वर्चनीय है, इसकी व्याख्या भी नहीं की जा सकती। क्या है, कौन बता सकता है? इसके तीन धर्म हैं – प्रकाश, क्रिया और स्थिति। ये तीनों धर्म बदलते रहते हैं इसलिए योग मार्ग आपको बताता है कि आप प्रकृति के प्रयोगता बनें। प्रयोगता माने प्रयोग करने

वाला। प्रकृति पर आपको प्रयोगाधिकार तो है लेकिन प्रकृति के स्वामी बनने की आप कोशिश मत कीजिए। आपका सत्त्वाधिकार प्रकृति पर नहीं हो सकता। प्रकृति पर सत्त्वाधिकार न पहले किसी का हुआ है, न है और न आगे होने वाला है। हाँ प्रकृति के प्रति आपका प्रयोगाधिकार हो सकता है। प्रयोगाधिकार के लिए ही प्रकृति है। महर्षि पतंजलि से पूछा गया कि प्रकृति का क्या प्रयोजन है? उन्होंने कहा कि प्रकृति का प्रयोजन है –

प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्।

(यो0 सू0 २/१८)

यह दृश्य का प्रयोजन है कि आपको भोग और अपवर्ग प्रदान कर दे। यदि आप उसमें आसक्त होते हैं तो वह आपको भोग देगी। भोग में दुःख भी होगा सुख भी होगा। थोड़ी देर हसेंगे और थोड़ी देर रोयेंगे। प्रियजनों का संयोग होगा तो आप खुशी मनायेंगे, उन्हीं प्रियजनों का वियोग होगा तो दुःखी होंगे।

नारद जी से कहा कि आप विवाह कर लो, उन्होंने कहा कि विवाह करने से क्या होगा? कहा कि शास्त्र में लिखा है कि यदि आप सन्तान रहित रहेंगे तो आपको स्वर्ग नहीं मिलेगा। नारद जी ने कहा कि विवाह तो कर लूं लेकिन विवाह करके जो धरनी आयेगी उसकी सम्भाल करने वाला चाहिए। हम तो भजन करने वाले हैं, खाना–पीना कहाँ से आयेगा? कहा कि उसकी व्यवस्था मैं कर दूँगा। कहा कि सन्तान हो जाएगी तो? कहा कि इसके पालन–पोषण की व्यवस्था मैं कर दूंगा। यदि सन्तान मर जाए तो रोएगा कौन? कहा कि रोना तो आपको ही पड़ेगा। नारद जी कहने लगे कि मैं पहले से ही नमस्कार कर रहा हूँ। प्रकृति का जो परिवर्तनशील स्वभाव है वो तो चलेगा। वह सुख भी देगा दुःख भी देगा। सुख क्षणिक होता है दुःख लम्बा हो जाता है। एक घण्टे का दुःख एक कल्प के समान बीतता है और एक कल्प का सुख एक क्षण के समान बीत जाता है। देखो अभी बोलने आए थे पौना घण्टा हो गया मुझे बोलते कुछ पता ही नहीं चला।

मेरा कहने का अभिप्राय कि सुख के क्षण ऐसे बीत जाते हैं कि पता ही नहीं चलता और दुःख के क्षण पहाड़ बन जाते हैं। यह जो प्रकृति का प्रवाह है उस पर आपका प्रयोगाधिकार है। आप उसका प्रयोग कीजिए, प्रकृति आपको कुछ नहीं कहती। क्या योगी प्रकृति का प्रयोग नहीं करता? वो तो सबसे ज्यादा करता है। वह तो प्रकृति के यथार्थ स्वरूप को जानता है इसलिए वह उससे चिपकता नहीं। भोगी सोचता है कि आज जिन पदार्थों से सुख मिल रहा है यदि वो पदार्थ कल नहीं रहेंगे तो मैं कैसे सुखी होऊँगा? इसलिए अब उन पदार्थों का जिनसे

सुख मिल रहा है संग्रह शुरू कर दिया। कल की बात नहीं यदि परसों न रहे तो? तब उसके लिए भी संग्रह करना शुरू कर दिया। पहले संग्रह के लिए मेहनत की फिर कल के लिए सुरक्षित रखने के लिए परिश्रम किया, उपभोग तो किया नहीं आपने। जो प्रकृति में आसक्त है वह उपभोग नहीं कर पाता। वो तो उसकी सुरक्षा में लगा रहता है। पहले उसके संग्रह में दुःख फिर उसकी सुरक्षा में दुःख, यदि चला गया तो बैठ कर रो रहा है कि मैं तो मारा गया। मर कहाँ गया, तू तो जी रहा है। वह अपने जीवन का आधार प्रकृति के पदार्थों को समझता था। अब प्रकृति का पदार्थ नहीं है इसलिए मर गया है। यदि वह प्रयोग में लगा रहे तो इसमें उसकी आसक्ति नहीं होगी। वह कहेगा कि भाई! हमारे प्रयोग से बचा है अब तुम प्रयोग करलो। यदि यह प्रयोगाधिकार स्वीकार कर लें तो क्या समझते हैं कि किसी अन्य समाज शास्त्र की व्यवस्था की आवश्यकता होगी? नहीं।

समाज में अव्यवस्था क्यों है? दरिद्रता क्यों है? दुःख क्यों है? वैदिक विज्ञान के प्रकाश में जीवन विधान नहीं स्वीकार किया गया। राम राज्य की कहानी आप लोग पढ़ते हैं। वाल्मीकि रामायण पढ़िए, महर्षि वाल्मीकि तो प्रत्यक्ष देख कर लिखे हुए हैं। उसमें स्पष्ट शब्दों में लिखा हुआ है कि राम के राज्य में कोई दुःखी नहीं था, दरिद्री नहीं था। तुलसीदास जी ने तो केवल एक चौपाई में संकेत मात्र दिया है –

नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।।

(रा० ७/२१–६)

उसका कारण क्या था? कारण था कि राम राज्य का प्रत्येक व्यक्ति प्रयोगाधिकार स्वीकार करता है सत्त्वाधिकार स्वीकार ही नहीं करता।

मास्को के एक फिलास्फी के प्रोफेसर मेरे पास आए। मेरे से मिले चर्चा होने लगी। मेरे से उन्होंने कहा कि आपके हिन्दुइज़्म की सारी बातें तो मेरी समझ में आती हैं, एक बात समझ में नहीं आती। मैंने सुना है कि आप हिन्दू धर्म के विद्वान् हैं इसलिए आप से उनका समाधान लेने आया हूँ। उसने कहा कि जो आपके यहाँ जातिप्रथा है, यह मेरी समझ में नहीं आती। मैंने कहा कि आपके सोवियत संघ में जाति प्रथा नहीं है? बोले नहीं, हमारे यहाँ तो नहीं है। मैं कहा कि आपके यहाँ प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी होते हैं? कहा कि वो तो होते हैं। हम कहा कि आप इसको क्या कहते हैं? चतुर्थ श्रेणी का कर्मचारी क्या प्रथम श्रेणी के कर्मचारी के साथ उठता–बैठता, खाता–पीता, मिलता–जुलता तथा आता–जाता है? कहा कि ऐसा तो नहीं होता। मैंने कहा कि फिर क्या होता

है? कहा कि चतुर्थ क्लास चतुर्थ क्लास है और प्रथम श्रेणी प्रथम ही है। मैंने कहा कि आपके यहाँ यह चार श्रेणियों में मनुष्यों का वर्गीकरण क्यों किया गया है? कहा कि सामाजिक व्यवस्था के लिए उनकी योग्यता के आधार पर यह वर्गीकरण किया गया है। मैंने कहा कि इसको हमारे यहाँ जातिप्रथा कहा गया है। मैंने पूछा कि आपने दर्शन पढ़ा है? क्या कभी आपने गीता पढ़ी है? कहा कि गीता सुनी तो है पढ़ी नहीं। मैंने कहा कि गीता के चौथे अध्याय में भगवान् ने घोषणा की है –

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

(गीता ४/१३)

यह मानवीय समाज गुण और कर्म के आधार पर चार श्रेणियों में भगवान् द्वारा बंटा हुआ है। भारत विश्व का प्राचीनतम देश है इसलिए वह प्राचीनतम वर्ण–व्यवस्था भारत में अब भी है। समाज को सुव्यवस्थित करने के लिए ही समाज को योग्यता के आधार पर चार वर्णों में बांटा गया था। आज भी वह वर्ण व्यवस्था भारत में चल रही है। इसी के कारण भारत विश्व का सबसे सम्पन्न देश है परन्तु गरीबों द्वारा आबाद है। क्यों? यह एक लम्बी कहानी है। मैंने उसको बताया कि यदि आपके घर में चोर आकर एक दो दिन चोरी करले तो आपको पुनः सम्भलने में कितने दिन लग जायेंगे? यह तो वो देश है जिसे 900 वर्ष तक लोग लूटते ही रहे। यहाँ चोर नहीं डाकू आए।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि प्रकृति के पदार्थों पर यदि आपका सत्त्वाधिकार मान लें तो यह समाज ऐसे ही दुर्गति को प्राप्त होगा जैसा आज है। यह सत्त्वाधिकार की चाह कब होती है मनुष्य में? जब वह अपने व्यष्टि भाव से युक्त होता है तब। व्यष्टि भाव से युक्त होने पर ही अपने सुख के लिए कल की चिन्ता होती है, परसो की चिन्ता होती है। उस चिन्ता को मिटाने के लिए उसमें संग्रह की वृत्ति आती है इसलिए यह व्यक्तिवाद ही पूँजीवाद का आधार है। जहाँ पर व्यक्तिवाद है, पूँजीवाद है,वहीं पर सारी अव्यवस्था है। वहीं पर अनाचार, अत्याचार, दुराचार तथा व्यभिचार है। कहने का अभिप्राय कि समाज की सभी बुराईयों का कारण व्यक्तिवाद है। दुनिया में दुःख का कारण व्यक्तिवाद है। आपका चित्त, आपकी बुद्धि सीमित है आत्मा तो सीमित नहीं है। कहा कि पता कैसे चले कि हमारी आत्मा सीमित नहीं बुद्धि सीमित है? यह तो आप प्रतिदिन अनुभव करते हो। जब आप जागृत अवस्था में होते हो तो आपको अपना व्यष्टि भाव दिखाई देता है। सुख मिलता है आपको कभी–कभी। जब आप स्वप्न में चले जाते हैं तब भी व्यष्टिभाव जीवित रहता है। स्वप्न में भी आप कभी–कभी सुखी होते हैं

ज्यादा तो दुःखी होते हो। जागृत में तो दुःखी हैं सपने में भी दुःखी होते रहते हैं। जब उठते हैं तो कांपते रहते हैं कि आज मैंने बड़ा भयंकर स्वप्न देखा। भयंकर माने भय उत्पन्न करने वाला। भय उत्पन्न करने वाली दुनिया में ही तुम रह रहे हो। तुम्हारा व्यक्ति भाव ही जड़ पकड़े हुए है, वही तो भय देने वाला है, उसी से भय उत्पन्न होता है। सपने में भय देख लिया तो कौन सा आश्चर्य हो गया। जब आप घोर निद्रा में जाते हैं क्या उस समय आपको अपना पता रहता है? नहीं रहता। वहाँ क्या मिट जाता है? व्यष्टिभाव। जब घोर निद्रा में व्यष्टिभाव मिट जाता है तो आपको दुःख होता है? चिंता होती है? नहीं होती। अभाव की अनुभूति होती है? अज्ञान की अनुभूति होती है? नहीं होती। मृत्यु का भय मिट जाता है। जिस समय आप अपने व्यष्टि भाव को लय कर देते हो उस समय आप सारे द्वन्द्वों से बच जाते हो। जितनी देर आप उस अवस्था में रहते हो वही तो आपके आनन्द की अनुभूति में हेतु बनती है। जागते हो तो फिर रोना–धोना शुरू हो जाता है।

सांख्य शास्त्र में कहा गया है कि घोर निद्रा तमोगुण की अवस्था है। उसे सुषुप्ति कहते हैं। सुषुप्ति, समाधि और कैवल्य, ये तीनों एक ही प्रकार के हैं। सुषुप्ति घोर तमोगुण की, समाधि शुद्ध सतोगुण की और कैवल्य गुणातीत अवस्था है। तीनों में व्यष्टिभाव नहीं रहता तो आप केवल आनन्द की ही अनुभूति नहीं करते शक्ति का अनुभव भी करते हैं। पतंजलि ने कहा कि यदि तुम योग की महत्ता जानना चाहते हो तो उसके लिए एक तरीका यह भी है –

स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा।

(यो0 सू0 १/३८)

तुम अपने स्वप्न और निद्रा के ज्ञान का अवलम्बन ले लो क्योंकि स्वप्न तक तो तुम्हारा व्यष्टिभाव जीवित रहता है और तब तक तुम रोते रहते हो। जब तुम घोर निद्रा में चले जाते हो जहाँ पर सारी स्मृतियों का अभाव हो जाता है। अभाव को अभाव करने वाली निद्रा वृत्ति में तुम्हारा व्यष्टिभाव नहीं रहता। उस अवस्था में तुम्हारे में आनन्द की अनुभूति होती है। जागते हो तो क्या कहते हो? बड़े आनन्द से सोए। बड़े सुख से नींद ली। सुखानुभूति हुई न! दूसरा जब आप सोने जाते हो तो बड़े थक करके आप निद्रा की गोद में जाते हो। जगने के पश्चात् आप ताज़गी अनुभव करते हो। यह शक्ति आप में कहाँ से आई? घोर निद्रा से। यदि स्वपन देखते–देखते रात बीत जाए तो इससे आप शक्तिशाली नहीं बनेंगे। सबेरे उठेंगे तो आप में सुस्ती बनी रहेगी। कहेंगे– क्या करें आज नींद नहीं आई इसलिए शरीर में स्फूर्ति नहीं है। आपको वहाँ तीन तत्त्व मिला– एक आनन्द

की अनुभूति, दूसरी शक्ति की अनुभूति और तीसरी उत्साह की वृद्धि और ताज़गी। जैसे प्रत्येक सवेरा नए प्रकाश को लेकर आता है ऐसे ही प्रातःकाल का जागना आपके लिए एक नया जीवन लेकर आया। ताज़गी, शक्ति और सुख, इन तीनों की उपलब्धि हुई घोर निद्रा की अवस्था में। वहाँ क्या था? केवल आपका सीमित अहं नहीं था, व्यष्टि भाव नहीं था इसलिए तीनों मिल गए। यदि व्यष्टि भाव वहाँ पर होता तो आप इन तीनों से वंचित रह जाते हैं।

योग क्या सिखाता है? योग सिखाता है कि आप व्यष्टि भाव से मुक्त होने का प्रयत्न कीजिए। यह व्यष्टि भाव ही आपके दुःख में हेतु है। यह यौगिक जीवन पद्यति समाज शास्त्र का बीज मन्त्र है। इस बीज मन्त्र के आधार पर दुनिया की बहुत बड़ी शक्ति को स्थापित किया जा सकता है। केवल व्यक्ति के जीवन के उत्थान की यह प्रक्रिया नहीं है, पूरे समाज, पूरे राष्ट्र, पूरे विश्व के जीवन के उत्थान की यह प्रक्रिया है। गीता यह प्रक्रिया आपको सिखाती है।

यह जो मैं आपको बता रहा हूँ यह वेद में है, उपनिषद् में है, सारे ग्रन्थों में है लेकिन गीता इसका आधार है। गीता का अनादि ज्ञान इसी जीवन पद्यति का अवबोधक रहा है। इसी के प्रकाश में भारत के बड़े–2 सम्राट भारत को महानता के शिखर पर पहुँचाए हैं। मैंने इस बात को ''गीता धर्म विज्ञान भाष्य'' के प्रारम्भ में ही लिखा है। गीता के चौथे अध्याय में भगवान् ने स्वयं भी कहा है कि यह दिव्यज्ञान सृष्टि के आदि में पहले मैंने विवस्वान् को दिया था। विवस्वान् ने अपने पुत्र मनु को दिया, मनु ने अपने पुत्र इक्ष्वाकु को दिया। महाभारत शान्ति पर्व में इसकी पूरी व्याख्या है। उसमें बताया गया कि महाराज इक्ष्वाकु के द्वारा अपनी प्रजा में यह दिव्य ज्ञान विस्तारित किया गया। इसी दिव्य ज्ञान के आधार पर सूर्य वंशियों ने अनेकों शताब्दियों तक शासन किया। उसमें आया है कि त्रेता के अंत तक यह सूर्य वंशियों के शासन की विद्या रही है, दिव्यज्ञान रहा है इसीलिए इस दिव्यज्ञान का एक नाम राज विद्या है।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।

(गीता ९/२)

यह राज शासन की विद्या रही है, राजव्यवस्था की विद्या रही है, राजसंचालन की विद्या रही है और पूरे राज की प्रजा के रंजन की विद्या रही है। यह अपने आप में अद्भुत विद्या है लेकिन दुर्भाग्य यह है कि जो कुछ भारत का है वह हमारे राजनेताओं के लिए त्याज्य है। जो कुछ बाहर से आ जाए हमारे राजनेताओं के लिए महान् हो जाता है, ग्राह्य हो जाता है। स्वतन्त्रता के पश्चात्

इस मानसिक दासता का यह परिणाम हुआ है कि राज्य संचालन की जो एक महान् विद्या हमारे पास है उसके ऊपर किसी की दृष्टि नहीं है। वह दृष्टिकोण किसी ने अपनाया नहीं। उसके मूल में केवल एक संदेश है कि प्रकृति के पदार्थों पर तुम्हारा प्रयोगाधिकार है सत्त्वाधिकार नहीं है। दूसरा योग्यता के अनुसार तुम्हें अधिकार प्राप्त करने की आकांक्षा रखनी चाहिए। यदि तुम अधिकार के भूखे हो तो स्वयं में योग्यता का सृजन करो। योग्यता के अभाव में किसी को अधिकार प्राप्त करने का औचित्य नहीं है लेकिन दुर्भाग्य से योग्यता के अभाव में सदियों तक कई वर्गों ने अधिकार भोगा है। अब वही व्यवस्था उलट करके जो अब तक योग्यता के अभाव में अधिकार से वंचित रहे उनके लिए अधिकार के आरक्षण की शुरू हो गई। योग्यता के अभाव में भी तुम अधिकार भोगो क्योंकि योग्यता के अभाव में हम अधिकार भोगते रहे हैं और उस अधिकार भोगने का परिणाम ९०० वर्षों की गुलामी था। अब योग्यता के अभाव मे तुम अधिकार भोगना शुरू करो जिससे भारत और कुछ शताब्दियों तक गुलाम बना रहे। यह देश का दुर्भाग्य है।

मैं आप लोगों से निवेदन कर रहा था कि योगमार्ग पर चलने के लिए गीता जो दृष्टिकोण देती है, जो प्रेरणा प्रदान करती है, उसके बीज मन्त्र को समझने का प्रयत्न करें। यह आत्म संयम योग का उपदेश भगवान् ने गीता के छटे अध्याय में दिया है। छटे अध्याय के अन्त में भगवान् ने यह घोषणा की है –

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकाः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।।

(गीता ६/४६)

समाज में तीन प्रकार के लोगों की प्रतिष्ठा होती है– एक तो तपस्वी की, एक ज्ञानी की और एक कर्मी की। समाज में वर्ग तो चार हैं लेकिन इन चार वर्गों में से तीन की प्रतिष्ठा होती है, चौथे की नहीं। तपस्वी अपने तप के बल से दिव्य शक्ति को प्राप्त करता है। ज्ञानी अपने ज्ञान के बल से विश्व के वैभव को प्राप्त करता है और कर्मी अपने कर्म के बल से प्रकृति के पदार्थों को प्राप्त कर लेता है और इन्हीं तीनों के नाते उनकी समाज में प्रतिष्ठा होती है। भगवान् कहते हैं कि योगी इन तीनों से बड़ा है इसलिए हे अर्जुन! तू तपस्वी मत बन, ज्ञानी मत बन, कर्मी मत बन लेकिन योगी बन।

इन तीनों में और योगी में क्या अन्तर है? कहा कि अन्तर बहुत बड़ा है। तपस्वी, ज्ञानी और कर्मी अपनी उन्नति के साथ अपनी उपलब्धियों में निमग्न रहने की कोशिश करते हैं। योगी का जीवन इनसे विलक्षण होता है क्योंकि योगी

की आस्था अपने व्यष्टिभाव को सुरक्षित रखने में नहीं है, वो उससे अभिन्न होता है। योगी का जीवन अपने लिए नहीं होता लोक के लिए होता है। अन्तर है दोनों में। छटे अध्याय के अन्त में भगवान् ने मानव मात्र को योगी होने का निर्देश दिया है। इस छटे अध्याय का पहला श्लोक मनुष्य के लिए नई दिशा प्रदान करता है जिसकी व्याख्या सायंकाल को सुनने को मिलेगी। अब समय बहुत हो गया है।

हरि ॐ तत्सत्

उदयपुर
18.03.1998
सायं

४

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

करुणानिधान भगवान् की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यह मेरी आन्तरिक शुभ कामना। हमारे यहाँ वैदिक विज्ञान में विकासवाद के सिद्धान्त को स्वीकार किया जाता है लेकिन यह विकासवाद डारविन वाला नहीं है। उससे बिल्कुल विपरीत भाव में इस विकासवाद की प्रतिष्ठा है। वेद की यह घोषणा है कि अनन्त सत्ता स्वयं को विराट् रूप में अभिव्यक्त करती है। ऋग्वेद का मन्त्र है –

ततो विराडजायत विराजोऽअधि पूरुषः।

(पू0सू0 ५)

उस अनन्त सत्ता से सर्वप्रथम विराट् का आविर्भाव होता है। वह विराट् फिर विभिन्न रूपों को अभिव्यक्त करता है। विराट् की अभिव्यक्ति फिर राट् रूप में होती है। ब्रह्म से विराट्, विराट् से राट्, राट् से समाज, समाज से परिवार और परिवार से व्यक्ति की उत्पत्ति होती है। सत्कार्यवाद् के सिद्धान्तानुसार प्रत्येक कार्य अपने कारण से अभिव्यक्त होता है और उसकी परिणति पुनः उसी कारण रूप में हो जाती है। इसके लिए सांख्य दर्शन का एक सूत्र है –

आविर्तिरोभावात्।

ये दो प्रक्रियाएँ प्रकृति में चलती रहती हैं। यह विराट् ब्रह्म की अभिव्यक्ति है। विराट् के अंग रूप में राट् है। राट् किसे कहते हैं?

आसुमद्र प्रर्यन्ता एक राट् इति।

समुद्रों से घिरी हुई जो पृथ्वी है इसकी संज्ञा वेद में राट् है। इसी राट् से राष्ट्र शब्द बना है लेकिन वहाँ पर राष्ट्र की कल्पना इतने छोटे से दायरे से नहीं है कि यह भारत राष्ट्र है, यह यूरोप है, अमेरिका है और अफ्रीका है। यजुर्वेद में समझाया गया है –

समुद्र पर्यन्ता याः पृथिव्याः एक राट्।

(ऐतरेय ब्राह्मण)

विराट् का ही एक अंश राट् है, यह आप सभी जानते हो। वर्तमान के वैज्ञानिक इसी प्रक्रिया को दूसरी भाषा में कहते हैं गैलेक्सी। गैलेक्सी से नेबुला, नेबुला से स्टार्ज़, स्टार्ज़ से यह हमारा खण्ड पृथ्वी है। पृथ्वी सूर्य का अंश है और सूर्य किसका अंश है? उस नेबुले का जिसमें सूर्य जैसे 42 बिलियन स्टार्ज़ हैं। उन स्टार्ज़ में से हमारा सूर्य एक है। वो जो नेबुला है जिसमें 42 बिलियन स्टारस हैं वह गैलेक्सी का अंश है। गैलेक्सी माने आकाश गंगा। स्पेस में कितने नेबुलाज़ हैं? वैज्ञानिकों ने 72 मिलियन नेबुलाज़ गिने हैं। अन्त में कह दिया कि अनगिणत नेबुलाज़ हैं। कोई गिन नहीं सकता। पश्चिम के वैज्ञानिक यह कह रहे हैं और हमारे यहाँ महानारायणोपनिषद् में इसकी वृहद् व्याख्या है। आप हैरान होंगे कि उस ऋषि को कैसे सारा पता चल गया? जब हम एक जगह वैदिक विज्ञान की व्याख्या करके यह बताए कि ब्रह्म से स्वयम्भू का आविर्भाव हुआ जिसको हमारे यहाँ हिरण्यगर्भ कहते हैं। ऋग्वेद में –

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्यजातः पतिरेकऽआसीत्।

(ऋग्वेद १०/१२१–१)

हिरण्यगर्भ सर्वप्रथम आविर्भूत हुआ जिसको अंग्रेजी में 'गोल्डन एग' कहते हैं। अब उस ब्रह्म से हिरण्यगर्भ का आविर्भाव हुआ। हिरण्यगर्भ (स्वयम्भू) जब टूटा तो उसके एक टुकड़े का नाम पड़ा पारमेष्टि। पारमेष्टि में जब गति होने लगी और जब वह टूटा तो उसके एक–एक खण्ड का नाम पड़ा आदित्य। उन्हीं खण्डों में से एक अपना आदित्य है यानी सूर्य का दादा स्वयम्भू है। महाभारत में उसे दादा न बताकर नाना बताया गया है क्योंकि अदिति का पुत्र है आदित्य। अदिति का पिता है दक्ष और दक्ष का पिता है स्वयम्भू (हिरण्यगर्भ)। स्वयम्भू का पुत्र दक्ष (पारमेष्टि) दक्ष का पौत्र आदित्य है। हमारे यहाँ अदिति शब्द का अर्थ होता है अखण्ड ऊर्जा। 'द्वौ अवखण्डने' धातु से 'दिति' शब्द बनता है और उसमें 'न' प्रत्यय जो लगता है उसका अर्थ होता है अदिति अर्थात् जो टुकड़े में नहीं है।

उसका अर्थ होता है अखण्ड ऊर्जा।

द्यौः अदिति यह ऋग्वेद का मन्त्र है। इसमें वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है। जिसको वैदिक भाषा में स्वयम्भू, पारमेष्टि और आदित्य कहते हैं उसी को वर्तमान की वैज्ञानिक भाषा में गैलैक्सीज, नेबुला और स्टार्ज़ कहते हैं। भाषा बदल जाने से तत्त्व तो नहीं बदल जाता। दुर्भाग्य यह है कि वैदिक भाषा का बोध तो रहा नहीं अंग्रेजी पढ़ लेते हैं इसीलिए कहते हैं कि वो जो कह रहे हैं सत्य है, हम जो कह रहे हैं वह गप्प है। यदि वैदिक विज्ञान का बोध हो तो मेरी तरह आपको भी यह स्वाभिमान होगा कि जिनकी तुम अब खोज कर रहे हो हमारे पूर्वजों ने तो हज़ारों वर्ष पूर्व इसको घोषित किया है और यह भी बताया है कि यह जो आदित्य आविर्भूत हुआ वो दो भागों में विखण्डित हो गया। एक भाग को द्यौ कहते हैं और दूसरे भाग को पृथ्वी कहते हैं – 'द्यावा पृथीभ्यो' द्यावा पृथीभ्यौ को दो नामों से अभिहित किया गया है कि यह नित्य दम्पति हैं। नित्य दम्पति माने ये शाश्वत पति पत्नी हैं। पत्नी कौन है? पृथ्वी। पति कौन है? द्यौ (सूर्य)। सूर्य और पृथ्वी के योग से ही संतानें उत्पन्न होती हैं। आज का वैज्ञानिक भी यही कहता है कि यदि सूर्य न होता तो पृथ्वी पर जीवन न होता। जीवों को जन्म देने का कार्य कौन करता है? तेज स्थापित करने का काम कौन करता है? पिता। आकृति कौन देता है? माता। इसीलिए जितने रूप हैं इनको पार्थिव कहा जाता है। पार्थिव माने पृथ्वी से बना हुआ। इनमें जो आत्मा है वह तो दिव्य है। दिव्य माने द्यू का अंश। ऋग्वेद ने कहा है–

सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।

यह सूर्य जो है यह सारे जगत् की आत्मा है। यदि सूर्य न हो तो सारी पृथ्वी पर कोई चेतन नहीं होगा। यह 'द्यावापृथ्वीभ्यो' इसको वैदिक व्याकरण में एक शब्द से सम्बोधित करते हैं 'रोदसी'। ये शाश्वत पति–पत्नी हैं, इन्हीं के योग से सारी सृष्टि हुई है। लोग कहते हैं कि सृष्टि के प्रारम्भ में संकल्पमयी मानसिक सृष्टि हुआ करती थी मैथुनी सृष्टि नहीं होती थी। आज भी बहुत सी मैथुनी सृष्टि नहीं होती। पृथ्वी में रसायण तत्त्व है। सूर्य के ताप से रासायन तत्त्व में रासायनिक प्रक्रिया होती है। उस प्रक्रिया से जीवन का आविर्भाव होता है, विद्वान् लोग जानते हैं। सूर्य का ताप अभी उतना नहीं है क्योंकि पृथ्वी सूर्य के उतनी निकट नहीं है जितने ताप से उस रासायनिक प्रक्रिया का मानवीयकरण किया जाए। सृष्टि के प्रारम्भ में उस रासायनिक प्रक्रिया से इतने बड़े–बड़े जन्तु उत्पन्न होते थे जिनको डायनासुर कहते थे। अब तो केवल उसके अवशेष मिलते हैं। उन बड़े जन्तुओं

में से केवल एक जन्तु शेष रह गया है जिसको आप हाथी कहते हैं लेकिन वो सृष्टि के प्रारम्भ में कैसे उत्पन्न हुए होंगे? केवल सूर्य के ताप से पृथ्वी के उन तत्त्वों में रासायनिक परिवर्तन से दैवी शक्ति का आविर्भाव हुआ होगा। कहते हैं कि अब नहीं होता। अब सूर्य की इतनी दूरी हो गई है जिससे इतने बड़े–2 जीव तो पैदा नहीं होते लेकिन आज भी सूर्य के ताप से पृथ्वी में रासायनिक परिवर्तन से बिना माता–पिता के जीवों की उत्पत्ति हो रही है। यदि छोटे रूप में हो रही है तो बड़े रूप में नहीं हुई, ऐसे कैसे कह सकते हैं? सृष्टि के आदि में तो मनुष्य नहीं थे। आखिर मनुष्य उत्पन्न हुआ है न? प्रारम्भ में तो उसी रूप में पैदा हुआ होगा जिसको कहते हैं मानसिक सृष्टि वा अमैथुनी सृष्टि और बाद में मैथुनी सृष्टि का क्रम चल पड़ा।

मेरे कहने का अभिप्राय कि वैदिक विज्ञान में मानव जीवन की मूल रूप से मीमांसा करते हुए यह बात समझाई गई है कि कारण हमेशा नित्य रहता है, शाश्वत रहता है। कार्य की अभिव्यक्ति और उसमें विलीनता हुआ करती है। कार्य की अपेक्षा कारण नित्य है इसलिए कार्य की कारण के प्रति समर्पण भावना बनी रहती है। इस सिद्धान्त के ऊपर जब आप ध्यान देंगे तो आप समझेंगे कि ब्रह्म कारण है विराट् का इसलिए विराट् का लय ब्रह्म में होता है। विराट् कारण है राट् का इसलिए राट् का लय विराट् में होता है। राट् कारण है समाज का इसलिए समाज का लय राष्ट्र में होता है। समाज कारण है परिवार का इसलिए परिवार का लय समाज में होता है। परिवार कारण है व्यक्ति का इसलिए व्यक्ति का समर्पण परिवार के प्रति होना चाहिए। इससे बढ़िया समाज शास्त्र की कोई 'थ्योरि' बता दें हमें। मैंने पढ़ा है कार्लमार्क्स को। उसका 'दास केपिटल' पढ़ा है। अभी तक हमें समाज शास्त्र की इससे उत्तम थ्योरि नहीं मिली है। व्यक्ति किसके लिए है? परिवार के लिए। परिवार किसके लिए है? समाज के लिए। समाज किसके लिए है? राष्ट्र के लिए। राष्ट्र किसके लिए है? विराट् के लिए। विराट् किसके लिए है? ब्रह्म के लिए। इस क्रम से यदि आप अपने आप को देखें तो क्या आप में लोभ की प्रवृत्ति जागृत होगी? नहीं होगी। संग्रह की वृत्ति जागृत होगी? नहीं होगी। हिंसा की वृत्ति जागृत होगी? नहीं होगी। यह अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि की सिद्धि स्वयं हो जायेगी लेकिन कब होगी? जब आप इस तत्त्व मीमांसा को समझेंगे तब होगी। बिना इस तत्त्व मीमांसा को समझे नहीं हो सकती इसलिए यौगिक जीवन पद्दति के लिए सर्वप्रथम पांच यमों और पांच नियमों की प्रतिष्ठा की गई। पांच यम आपकी सामाजिक व्यवस्था से सम्बन्धित हैं और पांच नियम

आपके व्यक्तिगत उत्थान से सम्बन्धित हैं। हिंसा आप अपनी तो नहीं करते? असत्य आप अपने से बोलते हैं? नहीं। चोरी अपनी करते हैं? नहीं। व्यभिचार अपने से करते हैं? नहीं। संग्रह अपना करते हैं? नहीं। ये पांचों जो दोष हैं हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार और परिग्रह, ये पांचों अपने से तो आप नहीं करते न? ये पांचों समाज से सम्बन्धित हैं।

दूसरे के अधिकार का जब आप अपहरण करते हैं और उसको अपने अधीन रखने का प्रयत्न करते हैं तो उसका नाम है परिग्रह। अपने अधिकार के विपरीत जब आप में उपभोग की प्रवृत्ति जागृत होती है तो उसका नाम है व्यभिचार। जब आप दूसरे की वस्तु को, दूसरे के सत्त्व को, दूसरे के अधिकार को मन से भी अपहरण करने की वृत्ति को अपनाते हैं तो उसको कहते हैं चोरी। जब आप अपने अन्तर के भाव को छिपा करके उसके बदले में दूसरे के प्रति बनाई हुई बात व्यक्त करते हैं तो उसको असत्य कहते हैं। जब दूसरे को मन से, वचन से तथा कर्म से पीड़ा पहुँचाते हैं तो उसको हिंसा कहते हैं। हिंसा, असत्य, चोरी, व्यभिचार और परिग्रह, ये पांच प्रकार के दोष आपके सामाजिक दोष हैं। इन्हीं पांचों के कारण समाज में अव्यवस्था, दुःख, अशान्ति और पीड़ा होती है। ये पांचों दोष आप में किसके द्वारा आए हैं? भोगमय जीवन की प्रक्रिया से। जीवन के दो ही रास्ते हैं– भोगात्मक और योगात्मक।

मैं आप लोगों को समझा रहा था कि आपकी पारिवारिक संरचना, सामाजिक संरचना और राष्ट्रीय संरचना सारी की सारी भारतीय दर्शन के प्रकाश में योगमय जीवन के ऊपर प्रतिष्ठित है। हमारे यहाँ हिन्दू धर्म में जब विवाह होता है तो वैदिक मन्त्र पढ़े जाते हैं। वैदिक मन्त्र जो कन्या को सम्बोधित करके पढ़े जाते हैं उनका अर्थ देखिए और जो उस वर को सम्बोधित करके पढ़े जाते हैं उनका अर्थ देखिए, आपको आश्चर्य होगा। वहाँ पर उस कन्या को प्रकृति के रूप में स्वीकार किया जाता है और वर को पुरुष के रूप में। कन्या को लक्ष्मी के रूप में स्वीकार करते हैं और पुरुष को नारायण के रूप में। वहाँ पर बताते हैं कि तुम दोनों का जो स्वरूप है वह पृथ्वी और जल के समान है। आपको एक बात और मैं बताऊँ, ये विवाह में पढ़े जाने वाले जो मन्त्र हैं वे ऋग्वेद के दशम मण्डल के 85वें सूक्त के मन्त्र हैं। इस सूक्त की द्रष्ट्री एक नारी है यानी हिन्दू धर्म में जो विवाह के प्रति प्रतिज्ञाएँ पढ़ी जाती हैं वेद मन्त्रों में, इसका किसी पुरुष ने निर्माण नहीं किया है भारत की एक महिला ने निर्माण किया है। इस मन्त्र की द्रष्ट्री है सूर्या सावित्री। उसके द्वारा प्रतिपादित हैं ये मन्त्र जिसमें स्त्री और पुरुष को एक रथ

के दो चक्र के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। एक जीवन को दो भाग के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। पति–पत्नी को पृथ्वी और सूर्य, लक्ष्मी और नारायण तथा पुरुष और प्रकृति के रूप में प्रतिष्ठित किया और उसमें सामाजिक संरचना का सारा बीज निहित है। यदि आप अपने उस जीवन विधान के मूलाधार को देखें तो आपको आश्चर्य भी होगा और प्रसन्नता भी। कितना सुन्दर विधान उसमें दिया गया है लेकिन दुर्भाग्य से विवाह के समय न लड़के को होश होता है न लड़की को होश होता है। पुरोहित बेचारा मन्त्र पढ़ता जाता है और जो विवाह में बैठे होते हैं वो कहते हैं कि पण्डित जी! मन्त्र जल्दी पढ़ दो। सड़क पर नाचने के लिए घंटों खड़ा होकर बाजा बजवायेंगे, नाचेंगे लेकिन विवाह के समय मन्त्र पढ़ते समय कहेंगे कि जल्दी–जल्दी पढ़ जायें।

मेरे कहने का अभिप्राय कि सामाजिक संरचना में भारतीय जीवन विधान योगात्मक है भोगात्मक नहीं है इसलिए आप अपने जीवन को उस दृष्टि से देखना शुरू करें। अपने आप में आप ईश्वरत्व को स्वीकार करें और फिर प्रकृति के आप प्रयोक्ता बनें। जब आप प्रकृति के प्रयोक्ता बनेंगे तो आपका जीवन सुखमय होगा और जब प्रकृति के आप प्रयोक्ता नहीं बनेंगे तो आपका जीवन दुःखमय होगा, दुनिया की कोई ताकत आपको सुख नहीं देगी। आपको गीता, उपनिषद्, वेद एक मत से इस सत्य का अवबोधन कराने का प्रयत्न कर रहे हैं।

इस सृष्टि क्रम को देखते हुए आप एक परिवार की इकाई हैं। आपका जीवन परिवार के लिए है और आपका परिवार समाजं के लिए है। आपका समाज राष्ट्र के लिए है, यह राष्ट्र विराट् के लिए और विराट् तो ब्रह्म की अभिव्यक्ति है। इस सम्बन्ध से आप उससे नित्य सम्बन्ध रखें। यदि आप अपने पीछे देखेंगे तो ब्रह्म की अनन्त सत्ता दिखाई देगी लेकिन यदि आप अपने आगे देखेंगे तो शून्य के सिवाय कुछ नहीं मिलेगा इसलिए अपने कारण की तरफ मुड़ो। वैदिक ऋषियों ने घोषणा की कि अपने आपको जानो। अपने आपको जानने का अभिप्राय क्या? अपने जीवन के यथार्थ स्वरूप को समझने का प्रयत्न करो। जब प्रयत्न करेंगे तो आपको यही पता चलेगा कि बुद्धि से लेकर के स्थूल शरीर तक प्रमाणुओं का संघात है, प्रकृति का परिणाम है और इस बुद्धि को प्रकाशित करने वाला जो चेतन चिदांश है वह एक है, अखण्ड है, अनन्त है, अजन्मा है, अविनाशी है। वो विभाजित नहीं हो सकता, खण्डित नहीं हो सकता। जब आपको अपने उस अखण्ड स्वरूप का भान हो जाएगा, अनुभव हो जाएगा तो क्या दुनिया में कभी

आप किसी प्रकार के अभाव से पीड़ित हो सकेंगे? क्या कभी आप मृत्यु के भय से विचलित हो सकेंगे? नहीं हो सकेंगे। आपका जीवन रसमय होगा, आनन्दमय होगा, परिपूर्ण होगा। फिर आपके जीवन में Temptation, greed, lust and Passion के लिए स्थान नहीं रहेगा और आप प्रकृति का प्रयोक्ता बन जायेंगे।

भगवान् ने गीता के छटे अध्याय में आत्मसंयम योग की व्याख्या की है। इस समय मानव समाज को आत्म संयम योग की आवश्यकता है। आत्म संयम से हीन होने के नाते प्रकृति के सारे पदार्थों की उपलब्धि के पश्चात् भी पश्चिमी जगत् नारकीय जीवन जी रहा है। कितना पतित जीवन पश्चिमी जगत् जी रहा है आप लोग कल्पना नहीं कर सकते। बहुत से हमारे नवयुवक तो यह सोचते हैं कि जो इंग्लैंड या अमेरिका में रहते हैं वे तो स्वर्ग में रहते हैं, उनको पता नहीं कि वहाँ की दुर्गति क्या है? मेरे से पूछिए जो 25 वर्षों से वहीं रह रहा हूँ और देख रहा हूँ उनका नारकीय जीवन। कारण क्या है? कारण यह है कि व्यक्तिवाद इतना दृढ़ हो गया है कि उसने परिवार, समाज तथा राष्ट्र को विखण्डित कर दिया है। वहाँ केवल व्यक्ति है और सरकार है। बीच की तीन कड़ियाँ वहाँ नहीं हैं? कौन नहीं है? परिवार नहीं है, समाज नहीं है और राष्ट्र नहीं है, केवल व्यक्ति और सरकार है। एक बात याद रखना सरकार का नाम राष्ट्र नहीं होता। राष्ट्र–राष्ट्र है सरकार नहीं। पश्चिम इसी अभाव से ग्रसित होकर के पागल हो रहा है। मैं तो यह कहता हूँ कि यदि भारतीय योगी वहाँ नहीं पहुँचे होते तो आधा अमेरिका पागल हो गया होता। आज भी वहाँ कभी जब विश्वविद्यालयों और चर्चों में बोलता हूँ तो उन लोगों को बताता हूँ कि हमारे यहाँ भारत में सबसे बड़ा प्रान्त उत्तर प्रदेश है जिसमें 16 करोड़ लोग रहते हैं। 16 करोड़ आबादी वाले उत्तर प्रदेश में केवल दो पागलखाने हैं एक आगरा में दूसरा बरेली में लेकिन अमेरिका में मैंने कोई ऐसा कस्बा नहीं देखा जिसमें एक पागलखाना न हो। इसका कारण क्या है? अनियन्त्रित वासनाएँ। यह तो आप जानते हो न, आपकी सारी शक्ति का स्त्रोत आपकी भावनाएँ हैं। यदि वे अनियन्त्रित हो जाएँ तो पागलपन की जनक बन जायेंगी। भारत में यही एक विशिष्टता रही है कि यहाँ भावनाओं को दबाया नहीं गया। उनको बुद्धि के प्रकाश में परिवर्तित किया गया है। You should try to divert your emotions. When your emotions will enlightened by your intellect or your knowledge then it will change in form of devotion. Devotion is nothing but only purified emotion. When your emotion is related with divine power then that becomes devotion.

जब आपकी भावना परमात्मा से जुड़ जाती है तो उसको भक्ति कहते हैं, गुरु से जुड़ती है तो श्रद्धा कहते हैं, बाल–बच्चों से जुड़ती है तो उसको ममता कहते हैं, स्त्री से जुड़ जाए तो उसको काम कहते हैं, शत्रु से जुड़ जाए तो क्रोध बन जाती है और धन से जुड़ जाने पर लोभ कहलाती है। किसी मनोवैज्ञानिक से पूछिए तो बतायेगा कि यह काम, क्रोध, लोभ, मोह These are only variations of one emotion nothing else. Uncontrolled emotions become root cause of so many kinds of mental diseases.

मैं आप लोगों से निवेदन कर रहा था कि भगवान् आपको यह समझाते हैं कि आप आत्मसंयम योग का अवलम्बन लें। आत्मसंयम योग गीता के छठे अध्याय में भगवान् ने समझाया। उसका प्रथम श्लोक है–

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स सन्न्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः।

(गीता ६/१)

बड़ी स्पष्ट बात कही। भगवान् ने कहा कि तुम योगी बन जाओ। द्वापर के अन्त में जब भगवान् उपदेश दे रहे थे उन दिनों योगियों और संन्यासियों की एक जमात हुआ करती थी। वो बड़ी विलक्षण जमात हुआ करती थी। संन्यासी वो होता था जो अग्नि का स्पर्श नहीं करता था। भोजन नहीं बनायेंगे, अग्नि नहीं छूयेंगे, बना बनाया कोई देगा तो खा लेंगे इसीलिए संन्यासी लोग भिक्षा मांग कर खाते थे। अग्नि का त्याग कर देना यह संन्यासी का लक्षण था और कर्म का त्याग कर देना योगी का लक्षण था।

संन्यास और योग, ये दोनों शब्द बड़े महत्त्व के थे। ये उपनिषदों के, वेदान्त के शब्द थे। इन शब्दों की बड़ी महत्ता थी। इन्हीं शब्दों की आड़ में इस प्रकार के पाखण्ड प्रचलित हो गए थे। जैसे आजकल शब्दों का दुरुपयोग हो रहा है ऐसे ही समय–समय पर शब्दों का दुरुपयोग होता आया है। भगवान् के समय में भी इन दोनों शब्दों का दुरुपयोग हो रहा था। भगवान् ने कहा कि भाई! तुम यह मत सोचो कि जो अग्नि का त्याग कर देता है,वह संन्यासी है। वह संन्यासी नहीं है। जो कर्म का त्याग कर देता है वह योगी है। भगवान् ने कहा कि वह योगी नही है। फिर योगी और संन्यासी किसे कहते हैं? भगवान् ने यहाँ व्याख्या की आत्म संयम योग की साधना की। यह केवल विरक्तों के लिए नहीं यह तो मानव–मात्र के लिए भगवान् का उपदेश है। मनुष्य मात्र कर्म नहीं करेगा तो जीवित कैसे रहेगा? बिना अग्नि का प्रयोग किए कर्म की सिद्धि नहीं हो सकती। दोनों

परमावश्यक हैं। भगवान् ने कहा –

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः।

(गीता ६/१)

जो व्यक्ति फल वा आश्रय त्याग करके कार्य कर्म करता है वही सन्यासी है वही योगी है न कि अग्नि और क्रिया का त्याग करके वाला।

भगवान् ने कहा कि कर्म की दो विधाएँ हैं एक काम्य कर्म और दूसरा कार्य कर्म। काम्य कर्म किसे कहते हैं? जिसमें कामना प्रधान हो। कामना को पूर्ण करने का संकल्प लेकर के जो व्यक्ति कर्म में प्रवृत्त होता है उस कर्म की संज्ञा है काम्य कर्म। लोक कल्याण, सर्वभूतहितेरताः की भावना से भावित हो करके जो कर्म में प्रवृत्त होता है, उसको कहते हैं कार्य कर्म। भगवान् ने कहा है –

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।

(गीता १८/२)

काम्य–कर्मों का जो त्याग कर देता है, वह संन्यासी हो जाता है, कार्य–कर्मों का त्याग करने वाला संन्यासी नहीं है। कार्य कर्मों का त्याग तो करना ही नहीं चाहिए। भगवान् कहते हैं –

न हि कश्चित्क्षणमपि जातुतिष्ठत्यकर्मकृत्।

(गीता ३/५)

दुनिया में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं है जो एक क्षण भी बिना काम किए रह जाए। जब किए बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता फिर काम तो करेगा। काम करेगा तो किस प्रकार का काम करना चाहिए उसे? भगवान् ने कहा कि कार्य कर्म करना चाहिए, काम्य कर्म नहीं करना चाहिए। काम्य कर्म करने से हानि क्या है? काम्य कर्म का जनक क्या है? व्यष्टिभाव जिसे अंग्रेजी में Individualism कहते हैं। व्यष्टिभाव के दो स्तर हैं–एक पेट और दूसरा परिवार। काम्य कर्म किससे सम्बन्धित है? अपने से या अपने बाल–बच्चों से। हमारे राजनेता जो दुनिया को लूट–लूट कर घर भर रहे हैं, किसके लिए? अपने लिए? नहीं जी। कुछ अपने लिए और कुछ अपने बाल–बच्चों के लिए। आप लोगों को भी याद होगा कुछ वर्ष पूर्व जब किसी से कोई कहता था कि तुम झूठ बोल दो, बेईमानी करदो तो वह कहता था हम बाल–बच्चे वाले आदमी हैं, ऐसा पाप नहीं कर सकते। अब किसी से कहो कि तुम बेईमानी क्यों करते हो? वह कहता है कि हम बाल–बच्चे वाले हैं कोई महात्मा थोड़े ही हैं। आजकल बाल–बच्चे वाला होना माने

बेईमानी का सर्टीफिकेट मिल गया। कैसे विचार बदला, कैसे युग बदला और कैसे जीवन की प्रक्रिया बदल गई, क्या कहा जाये!

जब आप अपने शरीर में या शरीर के सम्बन्धियों में आसक्त होते हैं तभी आप में काम्य कर्मों की प्रवृत्ति का उदय होता है। काम्य कर्मों की प्रवृत्ति आपको एक सीमित फल के साथ बाँध देती है। जिस समय आप कर्म में प्रवृत्त होने से पहले उसके फल का चिंतन करने लगते हैं, फल का आश्रय ले लेते हैं तो क्या आप पूरी शक्ति लगा कर कर्म में प्रवृत्त हो सकते हैं? असम्भव– क्योंकि आपका Mind divide हो जाता है। Mind divide होने से आपकी मानसिक शक्ति पूर्णतया उस काम में प्रवृत्त नहीं हो सकती। मानसिक शक्ति तो फल के आश्रित होती है इसलिए आप पूरी तरह काम नहीं करते। जब पूरा कर्म नहीं करते तो कर्म की अपूर्णता में फल की प्राप्ति तो नहीं होगी। जब फल की प्राप्ति नहीं होती तो आप क्या करते हैं? जब कर्म में आपको असफलता मिलती है तब आप क्या करते हैं? जब कर्म में सफलता मिल जाती है तो आप क्या करते हैं? दोनों अवस्थाओं में देखिए। कर्म में यदि सफलता मिल जाती है तो आप में लोभ की वृद्धि हो जाती है और कर्म में असफलता मिलती है तो आप क्रोध में आ जाते हैं। लोभ और क्रोध, दोनों काम्य कर्मों के परिणाम हैं। लोभ और क्रोध से बड़ा पाप का परिणाम और क्या हो सकता है? 'लोभ पाप कर मूल' है।

एक कहानी बच्चेपन में हमने पढ़ी थी कि पाप के बाप का क्या नाम है? उत्तर मिला था लोभ। क्रोध भी पाप का मूल है, ऐसा तुलसीदास जी अपनी रामायण में लिखते हैं। काम्य कर्मों में प्रवृत्त होने का परिणाम सदा पापमय हुआ करता है। भगवान् ने कहा –

काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः।

(गीता १८/१)

जो काम्य कर्मों का न्यास माने त्याग कर देता है कहा– 'सन्न्यासं कवयो विदुः,' उसी को संन्यासी कहते हैं। आप चाहे लाल कपड़े पहनें चाहे सफेद, काले, नीले अथवा हरे पहने, चाहे कपड़े उतारकर फैंक दें, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। यदि आपके जीवन में काम्य कर्म बना हुआ है तो आप दुःख से मुक्त नहीं हो सकते और यदि आपने काम्य कर्मों का त्याग कर दिया है तो आप के पास दुःख कभी फटक नहीं सकता। काम्य कर्मों का त्याग करके करेंगे क्या? बिना कर्म किए तो आप रह नहीं सकते। हाथ तो हिलायेंगे, रोटी तो खायेंगे आप? जब बिना किए नहीं रह सकते तो क्या करना चाहिए? भगवान् ने कहा – 'कार्यं कर्म

करोति यः।'

कार्य कर्म। कार्य कर्म किसे कहते हैं? जो समाज हित में समर्पित हो। जिन कर्मों के द्वारा मानव समाज का उत्थान होता हो उन कर्मों में प्रवृत्त होना कार्य कर्म कहा जाता है। कार्य कर्म माने करणीय कर्म। करणीय कर्म वही है जो –

छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः।

(गीता ५/२५)

'छिन्न द्वैधा' माने जिनका द्वैत भाव समाप्त हो गया हो। जब तक शरीर में आसक्ति है और परिवार में आसक्ति है तब तक द्वैत भाव समाप्त नहीं हो सकता। जब तक द्वैत भाव बना हुआ है तब तक काम्य कर्मों से आप मुक्त नहीं हो सकते इसलिए जिसके द्वैत भाव छिन्न हो गए हैं और जिसने अपने मन को अपने अधीन कर लिया है वही 'सर्वभूतहिते रताः' सम्पूर्ण प्राणियों के हित में कर्म का अनुष्ठान कर सकता है। भगवान् ने कहा है कि तुम्हारे जीवन की सारी दिशा यदि लोक कल्याणार्थ काम में है तो आपका द्वैत भाव समाप्त हो जाएगा और मन आपके अधीन होगा। इसका अभिप्राय यह नहीं कि तुम व्यापार करना बन्द कर दो या काम करना बन्द कर दो। काम तो करो लेकिन अपना दृष्टिकोण बदलो। जिस वस्तु का आप निर्माण करते हैं उस निर्माण के पीछे आपकी दृष्टि क्या है? आप विचार करें कि आप समाज के लिए निर्माण कर रहे हैं या धन के लिए।

एक बार मैं गुजरात की यात्रा कर रहा था। बड़ौदा से मैं अहमदाबाद की तरफ जा रहा था। मेरे साथ मेरे गुजराती शिष्य बैठे हुए थे। वे चर्चा करने लगे आपस में कि इस समय देखो क्या सरकार का अन्याय है? क्या अनर्थ है? गेहूँ का दाम देखो, चावल का दाम देखो, इतना बढ़ गया है। मैंने उनको देख कर पूछा– 'क्या करोगे गेहूँ, चावल तुम लोग? कहने लगे–क्यों महाराज! फिर खायेंगे क्या? हम कहा कि तम्बाकू खाया करो तुम लोग। कहा तम्बाकू? महाराज! आप मज़ाक कर रहे हैं क्या? हमने कहा–'भले आदमी! बड़ौदा से लेकर अहमदाबाद तक चारों तरफ मैंने तम्बाकू की खेती देखी है। जब तुम लोग बोते तम्बाकू हो, खेती तम्बाकू की करते हो तो गेहूँ क्यों खाते हो? गेहूँ तुम्हारे लिए पंजाब उत्पन्न करे और दुनिया का नाश करने के लिए तम्बाकू तुम उत्पन्न करो। उन्होंने कहा कि यह तो 'मनी कराप' खेती है महाराज। मैंने कहा कि मनी के लिए कराप तुम उत्पन्न करो जीवन के लिए नहीं। तम्बाकू कोई खाने की चीज़ है क्या? उससे पेट भरता है किसी का? नहीं। यदि तुम ऐसी वस्तु का उत्पादन करते हो जिसका लक्ष्य पैसा है तो उसको क्या कहा जाएगा? आप धन के लिए कार्य कर रहे हो

या मानव के लिए?

यू0पी0 में एक स्थान है हापुड़। एक दिन मैं व्याख्यान दे रहा था। मैंने कहा कि डा0 की दुकान में जितनी दवाईयां हैं वो रोगियों के लिए हैं। डा0 को भगवान् ने योग्यता दी है कि वह जान सके कि किस रोगी को कौन सी दवा देनी चाहिए। इसके लिए उतनी दवाईयां उसके पास पहुँच गई हैं। अब उस डाक्टर का कर्त्तव्य है कि जिस रोगी को जो दवा चाहिए वो उसमें से उसे दे दे। यदि वह डाक्टर समझता है कि ये दवाईयाँ उसकी हैं तो यह उसकी भूल है। वह परमात्मा के विधान के साथ अन्याय कर रहा है। उसका दण्ड आज नहीं तो कल उसे भोगना ही पड़ेगा। वहाँ एक बड़े प्रतिष्ठित डाक्टर थे अग्रवाल, वो सतसंग समाप्त होते ही मेरे पास आए और कहा कि महाराज आपने यह जो बात कही है वह मेरी समझ में नहीं आई। मैंने कहा कि यह तो सीधी सी बात है। आपकी दुकान में दवाईयां हैं? कहा हाँ, हमं कहा कि उसको आप खाओगे? बोले नहीं। हम कहा कि कौन खाएगा? रोगी् खाएगा न? हाँ। हम कहा कि सारी दवाईयां तो रोगी खाएगा नहीं। आपको परमात्मा की तरफ से यह योग्यता मिली है कि आप जानें कि कौन सी दवा किस रोगी को देनी चाहिए। इतना ही आपका काम है। दवा का जो मैटिरियल है उसके निर्माता तो आप नहीं हैं। वह तो प्रकृति का परिणाम है। प्रकृति उसकी निर्माता है। औषधि के जनक आप नहीं प्रकृति है। रोग के उत्पादक भी आप नहीं हैं, यह उनका प्रज्ञा अपराध है। परमात्मा द्वारा दी गई योग्यतानुसार यदि आप रोगी को उसके रोग के अनुसार दवा देते हैं तो आप कोई एहसान नहीं करते, अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं। यदि नहीं देते तो बेईमानी करते हैं, धोखा देते हैं। जो दवा चाहिए यदि आप उसके विपरीत दवा देते हैं तो आप अन्याय करते हैं। इस अन्याय को परमात्मा जो सर्वद्रष्टा है वह सह लेगा क्या? क्या राय है आपकी?

मेरा कहने का अभिप्राय कि आपकी क्रिया मानव हित में होती है या पैसे के हित में, यह आप स्वयं निश्चय करें। यदि आप पैसे के हित में क्रिया करते हैं तो वह काम्य कर्म है, यदि मानव हित में क्रिया करते हैं तो वह कार्य कर्म है। कबीर जुलाहा कपड़ा बुनता है इसलिए कि मेरे प्रभु पहनेंगे और रविदास चर्मकार जूता बनाता है कि मेरे प्रभु पहनेंगे। क्या उसके बदले में उनको पैसे नहीं मिलते थे? मिलते तो थे। अच्छे पैसे मिलते थे लेकिन उनकी दृष्टि पैसे पर नहीं थी। आपका दृष्टिकोण बदल गया है। आपका प्रत्येक कार्य धन के लिए होगा मानव कल्याण के लिए नहीं। हम कोई वस्तु उत्पादन करते हैं तो यह देखते हैं कि

इसकी मांग कितनी है, इसमें कितना लाभ ले सकते हैं। इसकी उपयोगिता कितनी है, यह हम नहीं देखते। मानव के हित में इनका कितना उपयोग हो सकता है, यह दृष्टि नहीं है और इसका परिणाम भी आप देख ही रहे हो।

मैं आप से निवेदन कर रहा था कि काम्य कर्मों का परित्याग करके यदि कार्य कर्मों का अनुष्ठान आप करें तो आप दरिद्री नहीं होंगे। आप सम्पत्तिशाली होंगे, वैभवशाली होंगे क्योंकि–

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।

(रा० ५/४०–६)

विशुद्ध बुद्धि का परिणाम है ऐश्वर्य। कार्य कर्मों का अनुष्ठान करने वाला जो योगी है वही संन्यासी कहा जाता है। काम्य कर्मों का का त्याग कर दिया इसलिए वह संन्यासी बन गया। कार्य कर्मों का अनुष्ठान करने लगा इसलिए वह योगी बन गया।

स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः।

घर में रहते हुए प्रत्येक कर्त्तव्य का पालन करते हुए आप सन्यासी भी हो सकते हैं और योगी भी हो सकते हैं। शर्त केवल इतनी है कि काम्य कर्मों का परित्याग कर दें और कार्य कर्मों के अनुष्ठान में लग जायें। प्राप्त योग्यता–सामर्थ्य का प्रयोग कार्य कर्म में करें। कार्य कर्म माने जो मानव हित में उपयोगी हो। काम्य कर्म माने जो चार पैसे देने वाला हो। तुलसीदास जो कहते हैं कि यह तो कलियुग है–

मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं।।

(रा० ७/९९–८)

माता–पिता बच्चों को बुलाते हैं और कहते हैं कि बेटा! वही कार्य करो जिससे चार पैसे मिलें लेकिन यह पता नहीं है कि उसके विपरीत कार्य करने से चार पैसे नहीं मिलेंगे क्या?

राम राज्य की महिमा आप लोग पढ़ते हो। गुप्त काल में भारत में भागवत् धर्म का प्रचार था। उसको स्वर्णिम युग कहा जाता है। चीनी यात्री ह्यूनसांग जिसकी महिमा गाता है वह भारत का गुप्त काल था। उसने अपने संस्मरण में लिखा कि 7 वर्ष तक मैं भारत में रहा लेकिन एक भी भिखारी देखने को नहीं मिला। भारत के लोग अपने घरों में ताला नहीं लगाते क्योंकि वहाँ चोरी का भय नहीं है। भारत के लोग किसी दूसरे को गुलाम नहीं बनाते अपने लोगों की तो बात ही अलग है। भारत में कोई किसी की नौकरी नहीं करता, कोई दासता नहीं होती। वह भी युग था भारत का जिसको स्वर्णिम युग कहा जाता है।

वह कोई एक दिन नहीं रहा, भारत के इतिहास में 400 वर्षों का काल है। वहाँ पर दृष्टिकोण क्या था? यही लोक कल्याण की भावना। यदि आपको और इसकी महत्ता जाननी हो तो कालीदास का 'रघुवंशम्' पढ़िए। मेरा कहने का अभिप्राय कि मनुष्य के विचारों में यदि परिवर्तन आ जाए तो सारा समाज यहीं पर स्वर्गीय सुख का उपभोग करने लगे। मानव का यही विचार जो काम्य कर्म से प्रेरित होकर के इस समय चल रहा है, इसी के परिणाम–स्वरूप मानव समाज अभिशप्त है, इसमें ज़रा भी संदेह नहीं है। भगवान् का निर्देश है कि तुम काम्य कर्म से मुक्त होकर के कार्य कर्म का अनुष्ठान करो। काम्य कर्मों के त्याग से आप संन्यासी और कार्य कर्म के अनुष्ठान से आप योगी बन जाते हैं–

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः।

(गीता ६/१)

जब आप योगी और संन्यासी बन जायेंगे तो आनन्द का समुद्र आपके अन्तर्तम में लहराने लगेगा। दुनिया की कोई शक्ति आपको पीड़ित नहीं कर सकती, यह भगवान् का निर्देश है। केवल अग्नि का त्याग करके आप योगी बनना चाहते हैं तो आप योगी और संन्यासी होने का पाखण्ड करते हैं। इससे न तो आपका कल्याण होने वाला है और न आप जिस समाज के अंग हैं उसका कल्याण होने वाला है। इसलिए मेरा पूर्व का संदेश याद रखो–व्यक्ति परिवार का, परिवार समाज का, समाज राष्ट्र का और राष्ट्र विराट् का अंग है।

व्यष्टि भाव में आबद्ध ये पश्चिम के जितने विचार आयात किए जा रहे हैं उसमें मूल सिद्धान्त है कि व्यक्ति ही समाज की इकाई है। व्यक्तियों के समूह का नाम समाज है। आप बताईए कि व्यक्ति व्यक्ति से पैदा होता है या समाज से पैदा होता है? समाज से। व्यक्ति कभी भी व्यक्ति से पैदा नहीं हो सकता। यदि व्यक्ति व्यक्ति से पैदा हो जाए तो सारी सृष्टि में अनर्थ हो जाए और वह विनाश के गर्त में चली जाए इसलिए जो जिससे उत्पन्न हुआ है वह उसका अंग है। व्यक्तियों के समूह से समाज नहीं बना है बल्कि समाज से व्यक्ति का सृजन हुआ है। जो जिससे बना है वह उसके लिए समर्पित हो, यही उसकी नियति है। यदि इसके विपरीत व्यक्ति समाज से उत्पन्न हुआ है तो व्यक्ति समाज का अंश है। यदि वह अपने अंशी के लिए समर्पित नहीं है, यदि अपने लिए अंशी का उपयोग करना चाहता है तो उसके विनाश की दिशा ही निश्चित हो गई है। वहाँ उत्थान के लिए तो कोई स्थान ही नहीं रहा।

आप इस वैदिक विचारधारा को समझिए जो तत्त्वविज्ञान के ऊपर प्रतिष्ठित है। इस विचारधारा को समझ करके ही आप अपने जीव में सुख और शान्ति को सुप्रतिष्ठित कर सकते हैं अन्यथा नहीं। गीता की यही सीख है। इसके आगे भगवान् और क्या समझाते हैं, यह तो आप लोगों को कल मैं समझाऊंगा, आज समय पूरा हो गया।

हरि ॐ तत्सत्

उदयपुर
19.03.1998
प्रातः

५

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

करुणानिधान भगवान् की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, इस मंगल कामना के साथ योगमय जीवन जीने की विधा से सम्बन्धित कुछ बातें आप लोगों को कल समझाई गई थी।

महाभारत में हमें ऐसा पढ़ने को मिलता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में भगवान् श्रीमन्नारायण सृष्टि के प्रथम पुरुष को जिसे वेद में हिरण्यगर्भ, पुराणों में ब्रह्मा कहा गया है (ब्रह्म का आपत्य होने के नाते उसे ब्रह्मा कहते हैं) उसे मानवीय जीवन जीने के लिए सम्पूर्ण ज्ञान प्रदान किया। पश्चात् ब्रह्मदेव ने अपने मानसिक पुत्र प्रजापति दक्ष को यह ज्ञान प्रदान किया। प्रजापति दक्ष ने अपने दोहित्र आदित्य को वह ज्ञान प्रदान किया। आदित्य ने मनु को, मनु से इक्ष्वाकु को वह ज्ञान प्राप्त हुआ। इक्ष्वाकु ने अपनी प्रजा में उस ज्ञान को प्रतिष्ठित करके व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र की सरचना की जो संरचना इस भारतीय जीवन पद्धति् में आज तक अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है।

महाभारतकार ने लिखा है कि उस ज्ञान के प्रकाश में जीवन विधान की प्रतिष्ठा त्रेता के अन्त तक पूर्ण रूप से चली लेकिन द्वापर के प्रारम्भ से ही उसमें विकृति आने लगी। विकृति क्यों आई? उसका बड़ा सुन्दर समाधान उसमें किया है किं द्वापर रजोगुण प्रधान युग है। रजोगुण प्रधान युग उस ज्ञान को

पूर्णतया क्रियात्मक रूप में प्रतिष्ठित करने में अक्षम रहा। यह तो आप लोग भी जानते हैं कि हमारे यहाँ युगों की प्रतिष्ठा गुणों के आधार पर है। जब मनुष्य की सात्त्विक वृत्ति होती है तो गम्भीर से गम्भीर विषय को वह ग्रहण कर लेता है। जब उसमें रजोगुण की थोड़ी सी मात्रा आ जाए तब उसके लिए वह गम्भीर ज्ञान ग्रहण करना और तदनुसार जीवन जीना कठिन हो जाता है। यदि उसमें कहीं तमोगुण आ जाए तो? फिर तो कठिन ही नहीं असम्भव सा बन जाता है। जीवन की सुव्यवस्था में सतयुग और त्रेता ये पूर्ण रूप से दिव्य भावों से अभियुक्त होते हैं। सतोगुण की प्रधानता को सतयुग कहते हैं। उसमें किन्चित मात्रा में रजोगुण आ जाए तो उसको त्रेता कहते हैं। रजोगुण प्रधान हो जाए तो द्वापर और तमोगुण प्रधान हो जाए तो कलियुग हो जाता है।

मैंने अपनी व्याख्या में इस बात को विशेष रूप से स्पष्ट किया है कि जो युग धर्म की बात है वह व्यक्ति की अपनी बुद्धि से सम्बन्धित है। काल का कोई अपना न तो अस्तित्व है न प्रभाव है। हमारे यहाँ सांख्य, योग और वेदान्त में काल की सत्ता स्वीकार नहीं की जाती। क्योंकि देश और काल दोनों सापेक्ष तत्त्व हैं, निरपेक्ष नहीं हैं। इस पर थोड़ा वैज्ञानिक दृष्टि से सोच लें, अभी आपकी समझ में बात आ जायेगी। देश और काल दोनों की स्थिति किस पर अवलम्बित है? आप क्या बतायेंगे? देश में दिशा प्रधान होती है। बच्चेपन से अपन सुनते आए हैं कि जिधर से सूर्य उदय होता है उसे पूर्व कहते हैं। क्या सही में सूर्य उदय होता है? सूर्य कभी उदय हुआ या कभी अस्त हुआ? नहीं। सूर्य कभी उदय होता ही नहीं और न कभी अस्त होता है। यदि पृथ्वी से आप 200 मील ऊपर चले जायें तो सूर्य के उदय होने, अस्त होने की प्रक्रिया ही आपको समाप्त मिलेगी क्योंकि सूर्य न तो उदय होता है और न अस्त होता है। वह तो अपने अक्ष पर धूम रहा है। अपनी अवस्था में स्थित है। यह उदय–अस्त की कहानी तो आपके पृथ्वी के चक्र से है। जब पृथ्वी का चक्र इस प्रकार से घूम रहा है तो उसमें किसे आप पूर्व कहोगे किसे पश्चिम कहोगे? पूर्व–पश्चिम आदि दिशा की कल्पना तो सापेक्ष है।

इसी रूप से काल की कल्पना है। काल भी हम सूर्य के उदय और अस्त से ही मानते हैं। पंचांग में काल की गणना सूर्य के उदय और अस्त से है। जब सूर्य उदय ही नहीं हुआ, अस्त ही नहीं हुआ तो काल की गणना कहाँ से शुरू होगी? एक बार एक ईसाई विद्वान् से इंग्लैंड के कैथेडरल चर्च में मेरी बात हो रही थी। कुछ मेरे अंग्रेज़ शिष्यों ने एक व्यवस्था की कि मैं जो बातें कह रहा हूँ यदि वे बातें विज्ञान–सम्मत और धर्म–सम्मत सत्य हैं तो ईसायित के बिल्कुल

विपरीत हैं। ईसाई पादरी भी यह घोषणा करते हैं कि हमारी बातें बिल्कुल सत्य हैं और ईश्वरीय हैं। कहा कि इनकी आपस में इस विषय पर चर्चा हो जाए। इंग्लैंड के बिशप ने एक विद्वान् चुन करके इसके लिए नियुक्त किया।

हम लोग बैठे। कैथेड्रल में चर्चा होने लगी कि बाईबिल और वैदिक विज्ञान की यथार्थता क्या है? मैंने उनसे एक बात पूछी कि बाईबिल के पहले अध्याय में बात कही गई है कि परमात्मा ने छः दिन में सृष्टि बनाई। छटे दिन उसने मनुष्य बनाया और मनुष्य बना कर वह संतुष्ट हो गया क्योंकि मनुष्य परमात्मा की प्रतिमूर्ति है। मैंने उनसे पूछा कि तुम्हारी बाईबिल यह कहती है कि परमात्मा ने चौथे दिन सूर्य बनाया। यह सूर्य जो बना सृष्टि क्रम में चौथे दिन बना। दिनमान तो सूर्य से ही गिना जाता है, जब चौथे दिन सूर्य बना तो तीन दिनमान की गणना किस आधार पर की गई? कैसे की गई क्योंकि सूर्य तो था नहीं। तीन दिन मापा कैसे गया? पादरी खीझ गया, वह कहने लगा कि तुम हिन्दू लोग प्रत्येक बात में 'क्यों' करते रहते हो। मैंने कहा कि मैं जानना चाहता हूँ, शायद मेरी समझ में नहीं आया कि तीन दिन मापा कैसे बाईबिल वालों ने? उसके पास इसका कोई उत्तर नहीं था।

हमारे यहाँ तो दर्शन–शास्त्र में देश और काल को सापेक्ष माना गया है। उसकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। अब जब उसकी स्वतन्त्रत सत्ता नहीं है तो यह कलियुग, द्वापर, त्रेता और सतयुग आदि की जो व्याख्या है, इसके विषय में क्या कहेंगे हम? यह भी सापेक्ष है निरपेक्ष नहीं है। इस सापेक्षता को ऐसे समझ लें आप कि जहाँ पर इनके गुणों का वर्णन किया गया है, प्रभाव का वर्णन किया गया है, वह आपकी बुद्धि से सम्बन्धित है। कलियुग का प्रभाव तमोगुण प्रधान बुद्धि पर है, द्वापर का प्रभाव रजोगुण प्रधान बुद्धि पर है और इसी रूप से त्रेता का प्रभाव रज मिश्रित सतोगुण प्रधान बुद्धि पर है। जहाँ शुद्ध सतोगुण है उसे सतयुग कहते हैं। अब इसी समय देख लीजिए। कलियुग का लक्षण बताया है –

तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा।।

(रा0 ७/१०४–५)

अब आप बताइये कि आप लोग इस समय यहाँ बैठकर तत्त्व विज्ञान की चर्चा सुन रहे हैं, क्या यहाँ कलियुग है? कलियुग होता तो आप लोग इस प्रकार यहाँ शान्ति से बैठ कर सुनते? यहाँ बैठ कर परमात्मा का ध्यान करते, न, न, वहाँ तो लड़ाई-झगड़ा ही होता। कलियुग का प्रत्यक्ष दर्शन करना हो तो मद्यशाला में चले जाइये। इस देश के सारे नागरिक तो कलियुग में नहीं हैं। मैं

आपको एक बात से सजग करना चाहता हूँ कि ये कथावाचकों ने, पौराणिकों ने आपके दिमाग को इस प्रकार से इस कलियुग के भय से अभिभूत कर दिया है कि यदि कोई अनर्थमय काम होता है तो उन्होंने यही कहना है कि यह तो कलियुग है, इसमें तो यही होगा। मैं पूछता हूँ कि यह सारा कलियुग हिन्दुओं के लिए रह गया और दुनिया के जितने लोग हैं उनके लिए कोई कलियुग नहीं है क्या? यदि यह दरिद्रता, दीनता, हीनता, परतन्त्रता, ये जितने पतन के लक्षण हैं, सारे के सारे कलियुग के हैं तो यह कलियुग केवल भारतियों के लिए है? जिसको कलियुग कह करके आप अपनी दीनता, हीनता स्वीकार करते रहे उन्हीं दिनों में वो लोग सारी दुनिया पर राज करते रहे। उनके लिए कलियुग नहीं था? वो कहते थे कि ये उनकी उन्नति के दिन हैं तो क्या काल भी दूसरे के लिए बदलता रहता है? पश्चिम वालों के लिए दूसरा था और आपके लिए अलग था? नहीं, आपकी बुद्धि को ऐसा संस्कार किया गया, कुसंस्कार आपके दिमाग में भर दिया गया कि कलियुग है, इसमें यही होगा। याद रखिए, ऐसा कोई कलियुग नहीं है। ज्ञान की अभिव्यक्ति सदैव शुद्ध सतोगुण में होती है। गीता के चौदहवें अध्याय में भगवान् ने बताया गया है कि –

सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च।।

(गीता १४/१७)

ये तीनों गुणों के तीन लक्षण बताये हैं। जब आपमें शुद्ध सतोगुण होगा तो आप में ज्ञान का उदय होगा। यदि रजोगुण आ जायेगा तो लोभ पैदा हो जायेगा और यदि तमोगुण आ जायेगा तो मोह पैदा हो जायेगा, अज्ञान पैदा हो जाएगा। इसमें काल का कोई मतलब नहीं है। एक ही काल में एक व्यक्ति दिव्य जीवन जीता है और उसी काल में दूसरा व्यक्ति अधःपतन को प्राप्त हो जाता है। काल तो एक ही है लेकिन नहीं, जब दिमाग में एक अज्ञानमय धारणा बन जाए तो मनुष्य उससे अपने आपको गिरा देता है। मैं आप लोगों को यह बताना चाहता था कि यह गीता का दिव्य ज्ञान भारत में सहस्त्रों वर्षों तक व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के जीवन का संचालक बना रहा लेकिन बाद में जैसे–जैसे उसमें रजोगुण और तमोगुण का प्राबल्य होने लगा वैसे–वैसे इस ज्ञान को वह ग्रहण ही नहीं कर सका। ज्ञान को ग्रहण न करने का परिणाम जो हुआ वह तो आप देख रहे हो। जैसे व्यवहार के लिए हम कहते हैं कि आज रविवार है, सोमवार है या मंगलवार है, दिन की गणना हम व्यवहार के लिए करते हैं, परम सत्य यह नहीं

है, यह सब व्यवहारिक सत्य है।

हमारे यहाँ दार्शनिकों ने सत्ता के दो भेद किए हैं– एक परम सत्ता और दूसरी व्यवहारिक सत्ता। व्यवहारिक सत्ता को हम झुठलाते नहीं लेकिन उसको परम सत्ता नहीं मानते। जैसे सूर्य उदय हो रहा है, अस्त हो रहा है, यह व्यवहारिक सत्ता है। हम कैसे कहें कि इसका कोई अस्तित्त्व ही नहीं है। जब तक हम पृथ्वी पर रहेंगे तब तक इसकी यह गति देखते रहेंगे, तब तक कल्पना हम करते रहेंगे। यदि पारमार्थिक दृष्टि से आप देखें तो न सूर्य कभी उदय होता है न अस्त होता है। यही आपके जीवन की कहानी है। आपके जीवन में भी दो प्रकार की सत्ताएँ काम कर रही हैं। यदि आप पारमार्थिक सत्ता के प्रति सजग हो जाएँ तो व्यवहारिक सत्ता का उपयोग करते हुए आप बन्धन में नहीं पड़ेंगे। यदि व्यवहारिक सत्ता के अनुसार ही कार्य होगा तो पारमार्थिक सत्ता का क्या मूल्य है? यदि आपको पारमार्थिक सत्ता का बोध हो जाए तो व्यवहारिक सत्ता को सत्य मानकर के उसमें आप आसक्त नहीं होंगे। उसको काम–चलाऊ समझेंगे आप। एक दिन मैंने उदाहरण दिया था। जैसे एक व्यक्ति किराये के मकान में रहता है। यदि उससे कोई पूछे कि आपका निवास कहाँ है? वो यही बतायेगा कि वो मेरा निवास स्थान है। आप वहाँ आना, मैं वहीं मिल जाऊँगा परन्तु अन्तर से उसे पता है कि वह उसका मकान नहीं है, किराये का है। इसी प्रकार से जो सरकारी नौकरी करते हैं उन्हें सरकारी आवास मिलता है। सरकारी आवास को वो अपना ही कहते हैं। लेकिन उनको पता है कि जिस दिन हमारी यहाँ से तबदीली हुई उसी दिन इसे खाली करना पड़ेगा। मेरा कहने का अभिप्राय कि व्यवहारिक सत्ता पारमार्थिक सत्ता में बाधा उत्पन्न नहीं करती। पारमार्थिक सत्ता व्यवहारिक सत्ता की यथार्थता का अवबोधन कराती रहती है। यदि आपको सत्य का बोध हो जाएगा तो व्यवहारिक सत्ता आपके लिए कोई बाधा उत्पन्न नहीं करेगी और अनासक्त हो करके इसका सही माने में प्रयोग कर पायेंगे। गीता इसी बात को समझाती है। कल मैंने बताया भी था–

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः।

(गीता ६/१)

जिसने यह निश्चय कर लिया कि परम सत्य तो परमात्मा है और हमारे जीवन का वही लक्ष्य है, उसी को हमें प्राप्त करना है, वहीं तक हमें पहुँचना है, अब उसके जीवन में क्रिया तो होगी लेकिन वह जानता है कि कर्म के द्वारा हम

वहाँ नहीं पहुँच सकते क्योंकि कर्म के साधन सीमित हैं। यह तो आप लोग जानते हो कि आज दिन तक सृष्टि में कोई ऐसा मनुष्य नहीं हुआ जो अपने सम्पूर्ण ज्ञान को कर्म में परिणत कर सका हो। असम्भव है। यथार्थ ज्ञान तो कभी कर्म में परिणत हो ही नहीं सकता। हाँ, ज्ञान के प्रकाश में उपयोगी कर्मों का अनुष्ठान तो होता है लेकिन यथार्थ ज्ञान कर्म में कैसे परिणत होगा? आपको पता चल गया कि सूर्य अपने अक्ष पर स्थित रहता है। यह ज्ञान आपको हो गया लेकिन क्या करेंगे आप? रात को सोना बन्द कर देंगे या सुबह उठकर जगना बन्द कर देंगे या रात–दिन जागते ही रहेंगे? सूर्य के प्रकाश में बैठे रहेंगे? उस ज्ञान को क्रिया में कैसे परिणत करेंगे? ज्ञान ज्ञान है, वह जानने के लिए है। लोग कहते हैं कि उस ज्ञान का क्या मतलब जो क्रिया में परिणत न हो? मैं पूछता हूँ कौन सा यथार्थ ज्ञान है जो तुम क्रिया में परिणत करोगे? आपको पता चल गया कि शरीर नाशवान् है और आत्मा अविनाशी है। शरीर से ऊपर आत्मा का अस्तित्त्व है। क्या करोगे आप? रोटी खाना बन्द कर दोगे क्या? उस ब्रह्म ज्ञान को, उस तत्त्वज्ञान को, उस आत्मज्ञान को क्रिया में कैसे परिणत करेंगे आप? किस रूप में परिणत करेंगे? क्रिया तो आप क्रिया के रूप में करेंगे। भूख लगेगी अपने पेट में और यह अनुभव हो गया कि एक ही आत्मा सभी स्वरूपों में है तो क्या राय है आपकी? सब रोटी खायेंगे तो आपका पेट भरता रहेगा क्या? मुझे तो ऐसा विश्वास नहीं क्योंकि मैं समाधि की उच्चतम अवस्था में भी यह अनुभव कर चुका हूँ कि समग्र ज्ञान क्रिया में परिणत नहीं होता। यथार्थ ज्ञान क्रिया में परिणत नहीं हो पाता। इसीलिए भगवान् ने गीता में बार–बार यह बात बताई है–

ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।

(गीता १८/५५)

मुझे तुम तत्त्वतः जानने का प्रयत्न करो। भगवान् ने क्या कहा?

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।।

(गीता ९/१३)

''वो मेरे को तत्त्वतः जानते हैं।'' तत्त्वतः जान लेने के पश्चात् व्यक्ति आसक्ति से मुक्त हो जाता है। तत्त्वज्ञान का यही प्रयोजन है कि आप आसक्ति से मुक्त हो जाएँ। तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में लिखा है –

जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई।
जब उर बल बिराग अधिकाई।।

आप तब समझ लें कि आपका मन अब रोग रहित हो गया है। कब? जब आपके मन में राग रहित होने की प्रबलता आ जाए। जब तक आपके जीवन में राग की प्रतिष्ठा बनी हुई है तब तक आप यथार्थ ज्ञान से वंचित हैं, यह याद रखें। यहाँ पर भगवान् का कथन है कि जब व्यक्ति भोगमय जीवन से विरत हो करके योगमय जीवन जीने का अभ्यस्त होता है तब उसके लिए दो कार्य आवश्यक हो जाते हैं – काम्य कर्मों का त्याग और कार्य कर्मों का अनुष्ठान। यह होता नहीं करना पड़ता है। पहले तो करना पड़ता है और बाद में अभ्यस्त हो जाने पर होने लगता है। उसके लिए महर्षि पतंजलि ने कहा है कि वह धर्म मेघ समाधि में पहुँच जाता है।

धर्म मेघ समाधि का लक्षण क्या है? कहा जैसे बादल जल की वृष्टि करता है ऐसे ही वह योगी अपने जीवन से धर्म की वृष्टि करता है यानी वह जो कुछ कहता है, करता है, वह सब धर्ममय हो जाता है। उस अवस्था में रहने वाले योगी को धर्म मेघ समाधि में स्थित कहते हैं। धर्म का मेघ बरसता है। इससे आप लोग समझ गए होंगे कि प्रारम्भ में जब आप योगमय जीवन जीने का संकल्प लेंगे, पहले तो आपको त्याग करना पड़ेगा और बाद में आपका त्यागमय स्वभाव बन जायेगा। पहले तो आपको अपनी कामना के विपरीत कर्म करने के लिए दृढ़ संकल्प लेना पड़ेगा कि कामना हमें गिरा नहीं सकती, अब मैं कामना से अभिभूत हो करके किसी कर्म में प्रवृत्त नहीं होऊँगा, अब तो मैं लोक कल्याण की दृष्टि से ही कर्म में प्रवृत्त होऊँगा इससे धीरे–2 स्वभाव बन जायेगा। गीता में भगवान् ने कहा –

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।

(गीता ३/९)

यज्ञार्थ जो कर्म किया जाता है उसमें बन्धन नहीं है लेकिन जो लोकार्थ कर्म किया जाता है वह बन्धन में हेतु बन जाता है। 'अवलोकयति इति लोकः' 'अवलोक्यते इति लोकः' लोक की कई प्रकार की व्याख्या की जाती हैं यानी आप अपने शरीर और शरीर के सम्बन्धियों के नाते जिन कर्मों में प्रवृत्त होते हैं वो कर्म आपके लिए बन्धन में हेतु बन जाते हैं और यज्ञार्थ माने जो आप परमात्म–भाव से कर्म में प्रवृत्त होते हैं वे बन्धन में हेतु नहीं बनते। काम तो वही होता है।

देवियां भोजन बनाती हैं। यदि भोजन बनाने में इनकी यह भावना हुई कि हम भगवान् को भोग लगाने के लिए बना रहे हैं तो वह यज्ञार्थ हो गया। यदि यह सोचा कि मैं अपने पुत्र, पति या स्वयं को स्वादिष्ट भोजन खिलाने के लिए बना

रही हूँ तो वही बन्धन हो गया। काम वही करना है दृष्टि बदलनी है। यदि भगवान् के लिए भोजन बनायेंगी तो पति, पुत्र भूखे मर जायेंगे क्या? भगवान् सारा खा जायेगा? ऐसी बात तो नहीं है। केवल भाव है। हमारे यहाँ भोजन को प्रसाद कहते हैं। आप प्रसाद पा लीजिए। यह नहीं कहते कि आप भोजन ले लीजिए।

हमारे यहाँ दो प्रकार की विचारधारा चली– एक शैवों की और दूसरी वैष्णवों की विचारधारा। एक ने भिक्षा स्वीकार किया दूसरे ने प्रसाद स्वीकार किया। भोजन दोनों ने स्वीकार नहीं किया। भिक्षा किस लिए है? उदर पूर्ति के लिए। प्रसाद किस लिए है? तृप्ति के लिए। दोनों में अन्तर है। प्रसाद उदर पूर्ति के लिए नहीं लिया जाता। प्रसाद में तृप्ति है। प्रसाद के विषय में भगवान् ने स्वयं कहा है –

प्रसादे सर्वदु:खानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते।

(गीता २/६५)

प्रसाद सभी दु:खों की हानि करके प्रसन्नता प्रदान करता है। भिक्षा उदर पूर्ति के लिए होती है। कबीर दास जी के शब्दों में –

कबीरा क्षुधा कूकरी करत भजन में भंग।
ताको टुकड़ा डाल के भजन करो नि:षंग।।

जो इस प्रकार के संन्यासी हैं वो तो भिक्षा लेते हैं। यहाँ कुतिया कौन है? क्षुधा। कबीरदास जी का कहना है कि क्षुधा रूपी कुतिया को भिक्षा का टुकड़ा डाल दो तो वह भौंकना बन्द कर देगी। टुकड़ा डालने से उसका भौंकना बन्द हो जायेगा और आप शान्ति से भजन करें वा आत्म चिन्तन करें। कहने का अभिप्राय कि एक की भिक्षा वृत्ति है दूसरे की प्रसाद वृत्ति है। गृहस्थी में रहने वाले लोग उसे भिक्षा तो नहीं कह सकते लेकिन प्रसाद तो कह सकते हैं। यदि प्रसाद की दृष्टि से आप भोजन करें तो क्या अनर्थ होगा? अच्छा हो जाएगा, उसमें आसक्ति नहीं होगी। प्रसाद कैसा है? वह तो भगवान् का है चाहे जैसा है।

जिस समय पाण्डवों ने राजसूय यज्ञ किया था तो जहाँ महात्माओं ने भोजन करके हाथ धोए वहाँ नेवला लौटने लगा। लोगों ने बड़े आश्चर्यचकित होकर देखा और पूछा कि तुम कौन हो? उसने बोलना शुरू किया कि महाराज रन्तिदेव के द्वारा किए गए यज्ञ में जब मैं लौटा तो मेरा आधा शरीर स्वर्णमय हो गया था। मैंने पूछा कि मेरा शेष आधा अंग कब स्वर्णमय होगा? बताया कि जब कोई धर्मात्मा यज्ञ करेगा तो तुम्हारा शेष अंग भी सोने का हो जाएगा। मैंने सोचा कि

धर्मात्मा युधिष्ठिर के यहां इतना महान यज्ञ हो रहा है तो मैं आकर यहाँ लौटने लगा। परन्तु मैं देख रहा हूँ कि मेरा आधा अंग स्वर्णमय नहीं हुआ। भगवान् ने कहा कि जब तक इस यज्ञ में कोई सन्त भोजन न करले तब तक यह होगा नहीं।'' कहा कि महाराज! इतने ऋषि–महर्षि भोजन किए हैं? कहा कि ठीक है पर सन्त कोई भोजन नहीं किया। समस्या हो गई कि किस संत को बुलावें? भगवान् ने कहा कि काशी में एक वाल्मीकि नामक संत हैं। हैं वो स्वपच परन्तु वो संत हैं। उसको यदि तुम जाकर ले आओ, वो आ जाएं और भोजन कर लें तो तुम्हारा यह यज्ञ सम्पूर्ण हो जाएगा। वाल्मीकि को बुलाने के लिए कौन जाए? भगवान् ने कहा कि भीम को भेजो। अहंकार रहित होकर के संत के पास जाओ, प्रार्थना करो और उनको ले आओ। भगवान् के निर्देशानुसार भीम काशी में गए, संत से प्रार्थना की, वो स्वीकार कर लिए। भगवान् बुला रहे हैं इसलिए चले आये। भगवान् ने द्रौपदी से कहा कि तुम अपने हाथों से भोजन बना कर इनको खिलाओ। द्रौपदी ने बड़े प्रेम से विविध प्रकार के भोजन बनाए और संत के सामने परोस दिए। जब वे खाने लगे तो सारी चीज़ें एक पात्र में डाल लिया और मिला करके खाने लगे। द्रौपदी के मन में आया कि यह क्या जानें कि कैसा स्वादिष्ट भोजन बना है।

अब बात यह थी कि यदि संत भोजन करेंगे तो यज्ञ पूर्ण हो जायेगा और आकाश से शंख ध्वनि होगी। महात्मा ने भोजन किया लेकिन शंख ध्वनि नहीं हुई। पाण्डव घबरा गए। द्रौपदी ने जाकर भगवान् से प्रार्थना की कि महाराज आप कह रहे थे कि आकाश में शंख ध्वनि होगी परन्तु वो हुई नहीं। इसका अभिप्राय कि यज्ञ पूरा नहीं हुआ? बोले – 'न' क्यों पूर्ण नहीं हुआ? कहा कि इसमें द्रौपदी कारण है। उससे पूछो, यज्ञ क्यों नहीं पूर्ण हुआ? द्रौपदी ने अपनी गलती मान ली कि महाराज मैं तो इतनी मेहनत से भोजन बनाया था और इन महात्मा ने सब कुछ इक्टठा कर लिया। इनको किसी पदार्थ का स्वाद तो मिला नहीं। मैं क्या करूँ? मेरे दिमाग में यह जरूर आया कि आखिर तो स्वपच है। भगवान् से पूछा गया कि अब क्या किया जाए? कहा कि द्रौपदी यदि तुम्हें कोई शंका थी तो तुम महात्मा से ही पूछती। तुम्हारे हृदय में इतनी भावना आनी ही नहीं चाहिए थी। यदि आई तो पूछ लेती कि प्रभो! आप सारे भोजन एक साथ मिला कर क्यों खा रहे हो? अन्त में जाकर द्रौपदी ने प्रार्थना की तो महात्मा वाल्मीकि ने उत्तर दिया कि देवी हम भोजन नहीं करते। हम तो प्रभु का प्रसाद पाते हैं। कहा कि सब एक में क्यों मिला लिया? कहा कि एक प्रसाद को पहले पा लेंगे तो दूसरे प्रसाद का अपमान होगा। सारा प्रसाद है तो किस प्रसाद को पहले ग्रहण करें और किस

प्रसाद को बाद के लिए छोड़ें? इसलिए सब को एक साथ मिला लिया जिससे किसी का अपमान ही न हो। प्रसाद सब अन्दर जायेगा। अरे अन्दर भी तो एक ही होना है। मेरे कहने का अभिप्राय कि यह एक दृष्टिकोण है। यदि आप अपना दृष्टिकोण बदल लें और यज्ञात्मक कर्म में प्रवृत्त हों तो वे कर्म आपके बन्धन में हेतु नहीं होंगे। तीसरे अध्याय में भगवान् ने निर्देश दिया है –

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर।

(गीता ३/९)

तुम्हारा कर्म यज्ञार्थ होना चाहिए लोकार्थ नहीं अर्थात् अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर नहीं भगवत् भावना से प्रेरित होकर होना चाहिए इसलिए कर्म में हृदय की दो अवस्थाओं का निर्देश किया है। यज्ञार्थ कर्म कैसे करेंगे आप?

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।

(गीता ३/११)

वहाँ पर भगवान् ने शब्द प्रयोग किया है भावना– **सदा तद्भावभावितः।** (गीता ८/६) भावना से युक्त होकर यदि आप कर्म में प्रवृत्त होते हैं तो वो कर्म होगा यज्ञार्थ। एक बात याद रखें कि भावना और कामना इन दोनों शब्दों का रूप देखिए। 'भू'सत्तायाम' से भावना शब्द बनता है और कामना बनता है अभाव से। 'कामयति' इच्छा से यानी जहाँ अभाव की अनुभूति होती है, उस अभाव की पूर्ति के लिए जो किया जाता है वह तो कामना है और जहाँ भाव की अनुभूति हो रही है, सत्ता की अनुभूति हो रही है और उसकी पूजा में जो समर्पित किया जाता है, उसको कहते हैं भावना। भावना में पूजा भाव है, पूजा की प्रतिष्ठा है, पूजा की वृत्ति है और कामना में अभाव की अनुभूति है। दोनों में कितना अन्तर है? गीता कहती है –

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।

(गीता १०/८)

सर्वरूप में परमात्मा की सत्ता ही उपस्थित है। वही परमात्मा ब्रह्म से विराट्, विराट् से राट्, राट् से समाज, समाज से परिवार, परिवार से व्यक्ति रूप में परिणत हुआ है। एक ही की सत्ता इन रूपों में अभिव्यक्त है तो यहाँ पर अभाव के लिए स्थान कहाँ रहा? अभाव कहीं हो सकता है? परमात्मा की उपस्थिति में

भी मनुष्य को अभाव की अनुभूति क्यों होती है? परमात्मा की उपस्थित की अनुभूति न होने के नाते, परमात्मा की सत्ता का बोध न होने के नाते, परमात्मा की सत्ता में विश्वास न होने के नाते उसे अभाव की अनुभूति हो रही है। जब वह अपने आप को एक सीमा में बाँध लेता है तब उसे अभाव की अनुभूति होती है।

यथार्थतया सत्य अनन्त है। वह सीमित नहीं किया जा सकता और न सीमा में बाँधा जा सकता है। यदि आप अपने आत्म स्वरूप का चिन्तन करें, आत्म स्वरूप का सदैव ध्यान करें और आत्म स्वरूप की सत्ता में आस्था रखें तो आपको कभी अभाव की अनुभूति नहीं होगी। एक बात मेरी और याद रखें कि न तो प्रकृति का कहीं अभाव होता है और न पुरुष का कहीं अभाव होता है। पुरुष सर्वव्यापी सत्ता का नाम है उसका कहीं अभाव नहीं होता। अनन्त ऊर्जा का नाम है उसका भी अभाव कभी नहीं होता। अनन्त ऊर्जा में कभी कमी नहीं आती some total energy हमेशा ऐसे रहती है। उसमें न तो वृद्धि होती है और न उसमें कभी ह्रास होता है।

वेद में इस 'स्पेस' को समुद्र कहा गया है। ऋग्वेद में सृष्टिक्रम में बताया गया कि जैसे समुद्र में तरंगें उठती हैं इसी रूप से यह 'स्पेस' अपस् तत्त्व का समुद्र है। इसमें जो सृष्टि आप देख रहे हो वह उसमें उठने वाली तरंगें हैं। जैसे तरंगें उठ करके उस समुद्र में विलीन होती हैं ऐसे ही यह सृष्टि उस अपस् तत्त्व में अभिव्यक्त हो करके उसी में विलीन होती रहती है यानी energy से matter और Matter से energy होते रहते हैं। Matter in itself is energy and matter too. यह तो आप लोग जानते हो और वैज्ञानिकों ने अब इसको स्पष्ट कर दिया है। वेद के मन्त्रों का अर्थ तो लोगों को समझ में नहीं आया लेकिन वैज्ञानिकों की व्याख्या तो समझ में आ गई न! यह बात वैज्ञानिकों को अब पता चली है। ऋग्वेद का ऋषि आज से हज़ारों–लाखों वर्ष पहले घोषणा करता है। हमारे यहाँ अघमर्षण सूत्र है। जो लोग संध्या–वन्दन करते हैं उन्हें पता होगा उसमें इस मन्त्र का वो नित्यप्रति पाठ करते हैं–

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।

कौन से समुद्र की बात है? वह इस समुद्र की बात नहीं। वह समुद्र वो है जिसकी निघण्टु में व्याख्या की गई है। यास्काचार्य ने निरुक्त में इसकी व्याख्या की है कि वह समुद्र स्पेस (आकाश) का नाम है। उसमे जो ऊर्जा भरी हुई है वही इस समुद्र का अपस् तत्त्व है। उसी से सृष्टि का आविर्भाव होता है। मूल में तेज है। तेज अपस् रूप में परिणत होता है और अपस् ही अन्न (solid) रूप में परिणत

हो जाता है। उसको Gases, liquid and solid कहिये यह तो वैज्ञानिक भाषा है। दार्शनिक भाषा में उसे तेज,अप और अन्न कहते हैं। छान्दोग्योपनिषद् में इसकी व्याख्या की गई है।

मेरे कहने का अभिप्राय कि सत्य की अभिव्यक्ति के जो स्वरूप बताये गए हैं यदि उस रहस्य को आप समझ जाएं तो अभाव के लिए कहीं स्थान नहीं मिलेगा। न तो प्रकृति का कभी अभाव होता है न चेतन का कभी अभाव होता है। मनुष्य को अभाव की अनुभूति कब होती है जानते हो? जब वह अपने आपको एक सीमा में बाँध लेता है। सीमा में बाँधते ही उसको अभाव की अनुभूति होने लगती है। उस सीमा को ही वह भाव पूर्ण बनाना चाहता है। यह उसकी दूसरी गलती है। सीमा भाव पूर्ण कैसे हो जाएगी? सीमा तो सीमा है। That is limited. Whatever is limited that must die, that must destroy. Because whatever is limited that is effect not cause in itself. Cause is eternal not effect. Effect is changeble always in every movement. सीमा को तुम भावपूर्ण बनाना चाहते हो यह तुम्हारी भूल है।

भगवान् कहते हैं कि तुम अपने आपको सम्भालो। कामना से मुक्त हो भावना से युक्त हो करके लोक कल्याणार्थ, लोक संग्रहार्थ कर्मानुष्ठान में प्रवृत्त हो जाओ। काम्य कर्मों का त्याग करते ही तुम संन्यासी बन जाओगे। लोक कल्याण में निरत होते ही तुम योगी बन जाओगे। जो संन्यासी है, योगी है वह तो मुक्त स्वरूप है। उसके लिए कहीं बन्धन नाम की कोई वस्तु नहीं है। इसकी व्याख्या फिर करेंगे, समय पूरा हो गया।

हरि ॐ तत्सत्

उदयपुर
19.03.1998
सायं

६

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

करुणानिधान भगवान् की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यह मेरी आन्तरिक शुभ कामना। प्रातः कालीन सत्संग में आप लोगों को आत्मसंयम योग से सम्बन्धित कुछ बातें समझाई गई। मूलतया जीवन का दो विधाओं का विश्लेषण करते हुए बताया गया है कि मनुष्य के लिए योग मार्ग ही आन्तरिक और बाह्य उन्नति में समुचित उपयोगी मार्ग है। इसके विपरीत भोग मार्ग उसके लिए आन्तरिक और बाह्य उन्नति में उपयोगी नहीं है।

वैदिक विज्ञान यह बताता है कि जिस समय गर्भस्थ बालक के चित्त में चेतन का आविर्भाव होता है उस समय उसमें दो प्रकार की क्रियायें प्रारम्भ होती हैं– एक श्वसन क्रिया जिसे प्राण क्रिया कहते हैं और दूसरा विचार प्रवाह। दूसरी भाषा में उसे कहते हैं Thought and breath. इसीलिए हमारे यहां इसको यमक कहा गया है। जिस समय ब्रह्मचक्र में चेतन का आविर्भाव होता है उसी समय ये दो प्रकार की क्रियायें प्रारम्भ हो जाती हैं– एक तो श्वास का आना–जाना शुरू हो जाता है और दूसरा बोधात्मक अर्थात् विचारात्मक क्रिया प्रारम्भ हो जाती है।

आपके शरीर में दो प्रकार की नाड़ियाँ हैं। एक नाड़ी को कहते हैं ज्ञान वाह नाड़ी दूसरी को रक्त वाह नाड़ी कहते हैं। रक्त वाह नाड़ी प्राण द्वारा संचालित है इसलिए हमारे यहाँ प्राण

की क्रिया को पांच भागों में विभाजित करके देखा जाता है। एक ही प्राण शरीर में पांच रूपों में कार्य कर रहा है। जब आप बाहर से ऊर्जा को आकर्षित करके अन्दर लेते हैं तो नासिका के द्वारा आकर के आपके हृदय तक आता है, इसको प्राण कहते हैं। यही प्राण शक्ति शरीर के अन्दर चार भागों में विभक्त हो जाती है। हृदय से नाभी तक समान वायु है। नाभी से पांव के अंगूठे तक जो है उसे अपान कहते हैं। कण्ठ से लेकर ब्रह्मरन्ध्र तक जो आपके द्यू लोक माने आपके शीर्ष स्थान पर जो सक्रिय है उसको उदान कहते हैं और जिसके द्वारा आपके सारे शरीर में रक्त संचार हो रहा है, उसको व्यान कहते हैं। तो प्राण, समान, अपान, उदान और व्यान एक ही प्राण इन पांच रूपों में काम कर रहा है। यह प्राण वाह नाड़ी की सारी गति है। उसी से आपके शरीर में रक्त संचार होता है। आपके शरीर में जो संवेदनात्मक क्रिया हो रही है जैसे कि आपको किसी ने छुआ तो आपको तुरन्त पता चल गया कि आपको किसी ने स्पर्श किया है, यह जो स्पर्श का बोध है यह रक्त वाह नाड़ी का काम नहीं है, यह ज्ञानवाह नाड़ी है जो संवेदना की जानकारी प्रदान करती है। ये दो प्रकार की नाड़ियाँ आपके शरीर में काम कर रही हैं। एक का आधार प्राण है और दूसरे का आधार मन है। इन्हीं दोनों के द्वारा आपका यह सारा संसार चल रहा है। जितने संकल्प–विकल्प हैं, जितनी कामनाएँ उत्पन्न होती हैं, ये कहाँ से उत्पन्न होती हैं? मन से उत्पन्न होती हैं। महाभारत का एक मन्त्र है जिसमें बताया गया है –

काम जानामि ते मूलं संकल्पात् किल जायते।

हे काम! मैं तेरे कारण को जान गया हूँ। तुम संकल्प से उत्पन्न होते हो इसलिए आज से मैंने निश्चय किया है कि मैं संकल्प नहीं करूंगा।

न त्वां संकल्पयिष्यामि समूलो न च रस्यसे।

(महाभारत शान्ति० १७७/४२)

अब मैं आज से संकल्प नहीं करूंगा इसलिए तुम मेरे में उत्पन्न नहीं हो सकते। उपनिषद् का यह मंत्र आपको बताता है कि संकल्प से ही सारी कामनाओं का आविर्भाव होता है। जब संकल्प से कामनाओं का आविर्भाव हुआ तो उन कामनाओं को पूर्ण करने के लिए जो क्रिया शक्ति है वह किसके आधार पर है? सकल्प शक्ति मन के आधार पर है और क्रिया शक्ति प्राण के आधार पर है। जब आपका मन संकल्प करने लगता है तो क्रिया शक्ति सक्रिय हो जाती है। उसकी पूर्ति के लिए ये दोनों प्रकार के तत्त्व आपके अन्दर मौजूद हैं। कर्म में प्राण शक्ति का ही वर्चस्व होता है और संकल्प में चेतना शक्ति का। चेतना शक्ति के प्रवाह

का नाम ही मन है। यदि आप अपने संकल्प को सीमित करते रहें तो प्राण शक्ति को आप सुरक्षित रख सकते हैं यदि आपका मन अधिक कामना से प्रेरित न हो तो आपकी प्राण शक्ति सुरक्षित रहेगी। जितनी कम मात्रा में आप कामना करेंगे उतनी ही कम मात्रा में आपकी प्राण शक्ति का व्यय होगा। यह बात सीधी सी है। भगवान् ने कहा कि चाहे आप गृहस्थ में रहो वा विरक्त बन जाओ, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। तुम मनुष्य हो, मनुष्य होने के नाते तुम्हारे लिये यह परमावश्यक है कि तुम अपनी कामना शक्ति या संकल्प शक्ति को स्वयं नियन्त्रित करो। यदि तुम उसको खुला छोड़ दोगे तो उसका कहीं अन्त नहीं है। उपनिषद् का एक मन्त्र है–

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाशुचिः।

(कठ० १/३–७)

जो अविज्ञान है, जिसमें अभी ज्ञान का प्रकाश नहीं हुआ, जो अमनस्क है, मन को अपने अधीन नहीं किया, जो सदा अपवित्र रहता है यानी वासनाओं में ही घूमता रहता है, वह मर करके पुनः मरने की दिशा में ही आगे बढ़ता है। मृत्यु के प्रवाह से मुक्त नहीं हो पाता इसलिए मनुष्य के लिए परमावश्यक है कि अपनी संकल्पात्मक शक्ति को संयमित करे यानी अपने मन को नियन्त्रित करने का प्रयत्न करे। मन को नियन्त्रित किसके द्वारा करेंगे? दो ही तो क्रियायें हैं– एक प्राण है दूसरा विचार है। हठ योगियों ने कहा कि मन की दौड़ प्राण पर अवलम्बित है। प्राण उसका अड्डा है। प्राण के बल पर ही मन दौड़ रहा है। प्राण को यदि तुम कंट्रोल कर लो तो मन अपने आप धीरे–धीरे शिथिल हो जायेगा, यह हठ–योगियों की धारणा है। हठ योगियों ने बताया कि हंग और ठंग, ये प्राण की दो गतियां हैं।

प्राणापानगति रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः।

(गीता ४/२९)

प्राणायाम के द्वारा प्राण और अपान की गति को यदि तुम अपने अन्दर संयमित कर लो तो तुम्हारा मन अपने आप शान्त हो जायेगा। हठयोगी प्राण के नियमन के द्वारा मन का नियमन करते हैं। यही एक रास्ता नहीं है दूसरा रास्ता भी है। दूसरा रास्ता है मन के नियमन के द्वारा प्राण का नियमन करना। मन को नियमन करने की जो प्रक्रिया है वह राज योग की प्रक्रिया है। उसमें यह बात समझाई गई है कि तुम्हारा मन ही सब कुछ नहीं है। मन तो चेतना के तीसरे स्तर की अभिव्यक्ति है। चेतना का पहला स्तर क्या है? उसको कहते हैं आनन्दमय कोश। दूसरा स्तर है विज्ञानमय कोश और तीसरा स्तर है मनोमय कोश। मन उसके तीसरे स्तर की अभिव्यक्ति है। मन से ऊपर दो और स्तर हैं –

मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः।

(कठ0 १/३–१०)

वहाँ पर बताया गया कि मन से परे तुम्हारी बुद्धि है यानी मनोमय कोश से परे विज्ञानमय कोश है बुद्धि।

मैंने पहले दिन ही आपको बताया था कि बुद्धि के नाते ही आपका व्यक्तित्व है, आपका अस्तित्त्व है और आपका कर्त्तृत्व है। आपको व्यष्टिभाव बुद्धि के नाते है। आत्मा व्यक्तिगत नहीं है, याद रखना। कुछ सम्प्रदाय जीवात्मा की स्वतन्त्र सत्ता मानते हैं लेकिन वे केवल विश्वास पर अवलम्बित हैं विवेक पर नहीं। विवेक पर क्यों अवलम्बित नहीं हैं? इसलिए जीवात्मा का लक्षण आप क्या करेंगे? जीवात्मा माने क्या? कहा कि चेतन क़ो जीवात्मा कहते हैं। जीवात्मा से परे आप परमात्मा को भी मानते हैं? बोले हाँ। परमात्मा माने क्या? कहा– अनन्त चेतन। आप यह बताईए जहाँ पर जीवात्मा है वहाँ पर परमात्मा है कि नहीं है? यदि वहाँ भी परमात्मा है तो यह आप कैसे विभाजित कर सकते हैं कि यह परमात्मा है यह जीवात्मा है। चेतन को आप दो भागों में विभाजित कैसे करेंगे? आकाश को आप दो भागों में कैसे विभाजित कर सकते हैं? नहीं कर सकते। असम्भव है। यदि कहें कि जहाँ तक जीवात्मा का चेतन है उतने चेतन में परमात्मा रूपी चेतन नहीं है तो दोनों सीमित हो जायेंगे। फिर तो परमात्मा सर्वव्यापी नहीं होगा। चेतन एक ही हो सकता है। एक ही चेतन को आप जीवात्मा कह दीजिए, परमात्मा कह दीजिए, कोई भी नाम दीजिए लेकिन वहाँ दो चेतन की स्थिति को आप सिद्ध नहीं कर पायेंगे। उसे व्यक्ति अनुभव तो कर सकता है कि चेतन है लेकिन वह चेतन क्या है, कौन बतायेगा? कैसे कहोगे कि यह ईश्वर का चेतन है, वह जीव का चेतन है। चेतन दो नहीं हो सकते। फिर ईश्वर और जीव का अस्तित्व कैसे सिद्ध किया जाए? या तो जीव होगा या फिर ईश्वर होगा।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः।।

(गीता १५/१७)

वो जो अखण्ड अनन्त चेतन सत्ता है उसी को ईश्वर, परमात्मा, पुरुषोत्तम आदि नामों से पुकारते हैं। वही अखण्ड अनन्त चेतन सत्ता जब चित्त के माध्यम से आविर्भूत होती है तो उसे जीव कहते हैं। चित्त क्या है ? चित्त प्रकृति का परिणाम है। सांख्य में उसे बुद्धि कहते हैं, योग में चित्त कहते हैं और वेदान्त में उसे सत्त्व कहते हैं। गीता चित्त, सत्त्व और बुद्धि, इन तीनों शब्दों का

प्रयोग करती है। एक तत्त्व के तीनों नाम हैं। तीनों अलग–अलग नहीं हैं। बुद्धि में चेतन का आविर्भाव होता है इसीलिए आचार्य शंकर ने इसके लिए तीन शब्दों का प्रयोग किया। कहा कि वो उसका बिम्ब है, प्रतिबिम्ब है, उसका अध्यास मात्र है। एक लकड़ी के दोनों किनारों पर आग लगा दीजिए और बीच में से पकड़ कर उसे घुमाइये। जब घुमाएंगे तो गोला सा चक्र दिखाई देगा। अधिक घुमाने से चक्राकार अग्नि दिखाई देगी। उसको कहते हैं एलात। उन्होंने यह भी उदाहरण दिया। उसको एलातवाद कहते हैं। अब उनके सम्प्रदाय के आचार्यों ने उसको अलग–अलग करके उसका विश्लेषण किया लेकिन मेरे विचार से ये तीनों शक्य हैं।

प्रतिबिम्ब हमेशा बिम्ब का होता है। यदि बिम्ब नहीं तो प्रतिबिम्ब कैसे होगा? चेतन का कोई बिम्ब तो है नहीं। प्रतिबिम्ब वहाँ कैसे सिद्ध हो सकता है? नहीं हो सकता। चेतन यदि गतिशील ही नहीं है तो उसका एलातवाद कैसे सिद्ध हो जायेगा? वहाँ तो गति ही नहीं। गति तो चित्त में है। गति तो प्रकृति में है। चेतन तो एक है, अखण्ड है, अनन्त है। एक अखण्ड अनन्त में गति नहीं होती। गति तो सीमा में होती है। जो अनन्त है उसमें गति कहाँ से आयेगी? किस प्रकार की गति होगी? वेद ने उसकी व्याख्या करते हुए बताया है –

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत्।

(ईशा0 ४)

मैंने अपने ईशोपनिषद के भाष्य में इसकी व्याख्या की है विस्तार के साथ। मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि ये जो कल्पनाएं हैं कि जीवात्मा परमात्मा का प्रतिबिम्ब है यह बात बनती नहीं क्योंकि परमात्मा को यदि बिम्ब मान लें तब तो प्रतिबिम्ब हो सकता है। जैसे जल में हम अपना प्रतिबिम्ब देखते हैं क्योंकि हमारा बिम्ब है। बिम्ब माने स्वरूप है इसलिए जल में दिखाई देता है। सूर्य का उदाहरण देना कि जैसे सूर्य जल में दिखाई देता है। सूर्य एक बिम्ब है उसका प्रतिबिम्ब जल में पड़ता है। आत्मा कोई बिम्ब तो है नहीं जिसका प्रतिबिम्ब चित्त में पड़े इसलिए प्रतिबिम्बवाद काल्पनिक है। एलातवाद भी काल्पनिक है। अब रह गया अध्यासवाद। अध्यासवाद माने है नहीं लेकिन अनुभव हो रहा है। गीता में भगवान् ने एक बात कही –

अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम्।

(गीता १३/१६)

वो अविभक्त होता हुआ भी विभक्त सा है। अविभक्त माने जो बँटा हुआ नहीं है। जो एक अखण्ड होता हुआ भी समस्त चित्तों में उसकी चेतना का

आविर्भाव हो रहा है। इसलिए वह अलग–अलग प्रतीत हो रहा है। इसी बात को 15 वें अध्याय में कहा –

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

(गीता १५/७)

तेरहवें अध्याय में भगवान् ने कहा –

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम।।

(गीता १३/२)

अब आप लोग समझ गए होंगे कौन सा मार्ग सही है। मैं उसे अभिव्यक्ति कहता हूँ। चिदांश की अभिव्यक्ति कहाँ हुई? चित्त में। चित्त में चिदांश की अभिव्यक्ति कैसे हो गई? यह एक बड़ा प्रश्न है। इसके विषय में सांख्य दर्शन में एक बात समझाई गई है। योगदर्शन में भी यह बात समझाई गई है। उसमें बताया गया है कि जैसे एक विशेष प्रकार का पत्थर होता है। चकमक पत्थर कह दीजिए उसे, यह एक विशेष प्रकार का शीशा भी होता है। उस शीशे को यदि धूप में रख दिया जाए तो उसमें यह क्षमता है कि सूर्य की किरणों को वो अपने अन्दर जज़्ब कर लेता है, केन्द्रित कर लेता है। वहाँ से अग्नि की चिंगारियां निकलने लगती हैं। वह पत्थर तो पार्थिव है। मिट्टी से परिवर्तित हुआ है इसलिए पार्थिव कहा जाता है लेकिन उसमें क्षमता है।

दूसरा उदाहरण दिया कि जैसे लोह पिंड को अग्नि में डाल दिया जाए तो थोड़े समय बाद आप देखेंगे कि वह अग्नि का अंगारा दिखाई देगा क्योंकि उसमें आग्नेय पदार्थों को ग्रहण करने की सामर्थ्य है। इसी रूप से आपके चित्त में, आपकी बुद्धि में चेतन की सत्ता को ग्रहण करने की सामर्थ्य है। यह व्यष्टि चित्त समष्टि चित्त का एक भाग है। व्यष्टि चित्त कैसे पैदा हो गया, वेद में इसकी व्याख्या है। जैसे प्रज्वलित अग्नि में से असंख्य विस्फुल्लिंग निकलते रहते हैं ऐसे ही उस व्यष्टि चित्त से असंख्य छोटे–छोटे चित्त निकलते रहते हैं। जितने चित्त निकलते हैं वो सब उस चेतन के प्रकाश से अभिभूत होते रहते हैं। उस चित्त में यह क्षमता है कि वह चेतन की सत्ता को ग्रहण कर सके। चेतन की सत्ता को ग्रहण करके वे चेतना युक्त हो जाते हैं। चेतना युक्त हो जाने पर उन सीमित चित्तों की संज्ञा हो जाती है जीवात्मा। उसमें जो सीमा है,उसमें जो Separate entity है वो तो प्रकृति का अंश है। उसमें जो चेतना है वह उस परमेश्वर का प्रकाश है। उसका व्यक्तिगत या अलग अस्तित्व नहीं है। जो उसका व्यष्टिभाव बना हुआ है

वह चेतन के नाते नहीं। बुद्धि के नाते उसका अलग अस्तित्व बना हुआ है। बुद्धि की जैसी अवस्था होगी वैसा ही वह होगा। यदि बुद्धि सतोगुण से अभिभूत है तो उसमें ज्ञान का प्रकाश होगा, रजोगुण से अभिभूत है तो क्रिया की स्थिति होगी और यदि तमोगुण आ गया तो उसमें स्थिरता आ जायेगी–

प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्।

(यो0 सू0 २/१८)

सारे जगत् का प्रवाह चल पड़ा। अब आप समझिए आपके जीवन की यह कथा है। यही आपका स्वरूप है। सीमित चित्त में प्रकाशित होने वाली चेतना के द्वारा जीवत्व की अभिव्यक्ति होती है, वही हमारा मैं है। है कहीं अपना अस्तित्व लेकिन जब अहंकार आता है तो कहते हैं कि क्या समझते हो मुझे?

एक वैज्ञानिक कहता है कि एक बूंद सीमन में पांच अरब जिवाणु होते हैं। उन पांच अरब में से एक जिवाणु नारी के 'एग' के साथ मिल करके गर्भ बनाता है। वही आकर व्यक्ति के रूप में पैदा होता है। एक बूँद का पांच अरबवां हिस्सा तुम्हारा अस्तित्व है। वेद कहता है –

स चानन्त्याय कल्पते।

(श्वेता0 ५/९)

लेकिन उसमें स्वयं में अनन्त होने की क्षमता निहित है क्योंकि चिदांश अनन्त का अंश है। वो अनन्त से अभिन्न है। अनन्त को विभाजित नहीं किया जा सकता। आपके चित्त में जो चेतन का आविर्भाव हुआ है वह चेतन खण्डित चेतन नहीं है। वह सीमित चेतन नहीं है। उसके स्रोत में अनन्त सत्ता, अनन्त चेतना विद्यमान है इसलिए वह अनन्त की ही अभिव्यक्ति है। अनन्त की अभिव्यक्ति जो विभिन्न रूपों में हुई है, वह भी अपने आप में अनन्त है। वेद इसीलिए कहता है–

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।

(ईशा0 शान्तिपाठ)

वह पूर्ण है, यह भी पूर्ण है क्योंकि उस पूर्ण से इस पूर्ण का आविर्भाव हुआ है। यह पूर्ण जब उस पूर्ण में लीन हो जायेगा तो वह पूर्ण ही शेष रहेगा। 0+0 = 0, 0 – 0 = 0 ही आयेगा,वहां ज़ीरो के अतिरिक्त कुछ नहीं होता इसलिए पूर्णता में कभी भी अभाव की स्थिति नहीं आती। किसी भी अवस्था में रहे, वह पूर्ण ही रहता है। इसलिए – **स चानन्त्याय कल्पते।** वेद कहता है कि जो इस चित्त के माध्यम से प्रकट होने वाला चिदांश है वह स्वयं में अनन्त है और अनन्त होने

की सामर्थ्य रखता है। आप उस अनन्त की ही अभिव्यक्ति हैं, ऐसा यदि कहा जाए तो इसमें अतिश्योक्ति नहीं होगी लेकिन आपका उस अनन्त से अलग अस्तित्व है, ऐसा मानना आपका भ्रम है। जब अलग अस्तित्व नहीं है तो बन्धन किसका है भाई? जब अलग अस्तित्व नहीं है तो मुक्ति किसकी? मैंने अपनी साधना से उठने के पश्चात् एक पद में कहा है –

हो मुक्त जो बन्धन में हो; हो पूर्ण वह जा में कमी।
तूँ पूर्ण मुक्त स्वरूप है, बनना तुम्हें क्या संयमी?

(विश्वात्मा बावरा – 'तू ब्रह्म ही का लाल है')

मेरे कहने का अभिप्राय कि आप जब इस क्रम को समझेंगे तो आपको पता चल जायेगा कि आपके यहाँ न कोई बंधन है न कोई मुक्ति। जब बन्धन ही नहीं तो मुक्ति कहाँ से होगी? यह बन्धन और मोक्ष दोनों भ्रान्ति के परिणाम हैं। भ्रांति में बन्धन है भ्रान्ति खत्म हो गई तो मुक्त हो गए लेकिन यथार्थ यह है जो मैंने आपको बताया।

जब चित्त में चेतना का आविर्भाव होता है तो उसके साथ प्राण क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। प्राण और चेतना के तीसरे स्थान पर आने वाला मन संकल्प के साथ युक्त हो जाता है। When light manifests in your mind stuff that is called life. When life appears in your heart that is called emotion. Emotions develop in the form of love. लव का ही रूप काम है। काम पर कंट्रोल आप कर सकते हैं। किसके द्वारा? उस लाईट के द्वारा आप इसको कंट्रोल कर सकते हैं। जैसा मैंने आपको बताया यह तीसरी अभिव्यक्ति है। मनोमय कोश के ऊपर विज्ञानमय कोश और आनन्दमय कोश हैं। इसके द्वारा आप इसे कंट्रोल कर सकते हैं। गीता के छटे अध्याय में बताया–

संकल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।

(गीता ६/२४)

ये काम सारे संकल्प से उत्पन्न होते हैं। जो संकल्प से उत्पन्न होने वाला काम है इसका आप त्याग कर सकते हो? अपनी समस्त कामनाओं को पूर्ण कर सकते हो? न, न असम्भव है। आज दिन तक कोई सृष्टि में ऐसा नहीं हुआ जिसने अपनी सारी कामनायें पूर्ण कर ली हों।

एक कथा आती है। जब रावण को भगवान् ने मारा तो भगवान् ने लक्ष्मण से कहा कि लक्ष्मण तुम जा करके रावण से कोई शिक्षा ले आओ। यह ऋषिकुमार रावण बड़ा नीतिज्ञ और बड़ा विद्वान् है। लक्ष्मण जी गए और उसके

सिरहाने जाकर खड़े हो गए। कई बार उससे कहा कि आप हमें कोई अपना अनुभव सुनाइये। वह मौन रहा। लक्ष्मण लौट आया। कहा– महाराज! वह महा अहंकारी है, उसने कोई उत्तर नहीं दिया। कहा कि तू कहाँ खड़ा था। कहा कि मैं जाकर उसके सिरहाने खड़ा हो गया था। कहा कि भले आदमी! जिससे ज्ञान ग्रहण करना हो उसके चरणों के पास खड़े होते हैं या सर पर बैठते हैं? लक्ष्मण जी पुनः गए और उसके चरणों के पास खड़े होकर हाथ जोड़ कर कहा कि ब्रह्मदेव! आप हमें कोई उपदेश दीजिए। उसने देखा तो मुस्कराते हुए लक्ष्मण से कहा – ' तीन बातें मेरे जीवन का सार हैं। पहली बात – कोई अच्छा काम करना चाहो तो कभी उसे कल पर नहीं छोड़ो कि कल कर लेंगे। उसे तुरन्त कर देना चाहिए। कोई बुरा काम करना चाहो तो उसको तुरन्त करने की कोशिश मत करो। उसे कल पर छोड़ दो क्योंकि न तो कभी कल आयेगा न तो काम होगा। उससे बच जाओगे। दूसरा संसार के किसी भी पद और पदार्थ के नाते मनुष्य को कभी अहंकार नहीं करना चाहिए। आज मेरे अहंकार का ही परिणाम है कि मैं इस दशा में पड़ा हुआ हूँ। तीसरा उसने कहा कि दुनिया में कभी भी कोई व्यक्ति अपनी सारी कामनाओं को पूर्ण नहीं कर सकता। कामनाओं के त्याग में ही मनुष्य का कल्याण है।''

कुछ लोग कहते हैं कि भगवान् हमारी कामनाओं को पूर्ण करेंगे। मैं उनसे कहता हूँ कि भगवान् तो अपने बाप की ही कामना पूरी नहीं कर सके। महाराज दशरथ चाहते ही रह गए कि मेरे सामने राम राजा बन जायें। गुरुदेव विशिष्ट से कहा भी –

प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं। यह लालसा एक मन माहीं।।

(रा0 २/४–४)

सारी कामनाएँ मेरी पूरी हो गईं बस एक ही कामना और रह गई है। वह क्या है –

मोहि अछत यहु होइ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन लाहू।।

(रा0 २/४–३)

मेरे सामने राम गद्दी पर बैठ जाएँ फिर मेरा शरीर रहे चाहे न रहे, हमें कोई चिन्ता नहीं। क्या उनकी कामना पूरी हुई? नहीं। मैं लोगों से कहता हूँ कि जब राम ने अपने बाप की कामना पूरी नहीं होने दी भले आदमी! तो तेरी कामना कहाँ से पूरी करेंगे? कामनाओं के चक्र में मत पड़ो। उनका त्याग ही तुम्हारे लिए श्रेयस्कर है।

संकल्प प्रभावान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।

(गीता ६/२४)

यह गीता का संदेश है। कामनाओं का त्याग किया जाता है, उनकी पूर्ति नहीं होती। इनको नियमित किया जाता है, सीमित किया जाता है। इन कामनाओं का त्याग करने पर ही आप संन्यासी बनेंगे। संन्यासी लाल कपड़े पहन कर नहीं बनेंगे। लाल कपड़े पहन कर यदि कोई संन्यासी बनता फिर तो क्या पूछना था।

हमारे यहाँ सांख्य शास्त्र में यह बात समझाई गई है कि नौ प्रकार की तुष्टियाँ हैं। पांच प्रकार की तुष्टियों से तो संसार के विषय प्राप्त हो गये, उसमें आनन्द आ गया और चार प्रकार की तुष्टियाँ और हैं। उसमें हैं-भगवद् कृपा, प्रकृति तुष्टि, उपकरण तुष्टि और काल तुष्टि।

समय आयेगा तो मोक्ष मिल जायेगा, हम क्यों प्रयत्न करें – इसे काल तुष्टि कहते हैं। प्रकृति तुष्टि – जैसे प्रकृति ने एक सैल के प्राणी अमीबा से विकसित करते हुए हमें मनुष्यता तक पहुंचाया है ऐसे ही प्रकृति हमें ब्रह्म तक पहुंचा देगी। इसको कहते हैं प्रकृति तुष्टि। उपकरण तुष्टि माने अब मैं लाल कपड़ा पहन लिया संन्यासी बन गया, मेरा मोक्ष हो जायेगा। इसको उपकरण तुष्टि कहते हैं। यह भी नहीं होने का। भगवान् कृपा करेंगे तो मैं मुक्त हो जाऊँगा। यह भी एक प्रकार की तुष्टि है। इस प्रकार की तुष्टियों से मनुष्य का उत्थान नहीं होता इसलिए भगवान् ने कहा –

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।

(गीता ६/५)

आप अपने पतन और उत्थान दोनों के लिए जिम्मेदार हो। यहाँ पर भगवान् बता रहे हैं –

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।

हे पाण्डव! जिसको संन्यास ऐसा कहा गया है योग भी उसी को कहते हैं। ये संन्यास और योग दोनों अलग–अलग नहीं हैं। आप क्या बिना संन्यासी बने योगी बन सकते हैं? नहीं –

न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन।

(गीता ६/२)

यह भगवान् की घोषणा है कि बिना संन्यासी बने आप योगी नहीं बन सकते। योगी होने का आपको भगवान् ने निर्देश दिया है। **तस्माद्योगी भवार्जुन।** (गीता ६/४६) योग मार्ग को अपनाए बिना आपका उत्थान नहीं है। बिना संन्यासी

बने आप योगी नहीं बन सकते। संन्यासी माने काम्य कर्मों का त्याग –

काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्न्यासं कवयो विदुः।

(गीता १८/२)

काम्य कर्मों की पूर्ति नहीं होती उसका त्याग ही होता है। आप यह बात हमेशा याद रखें कि जिन काम्य कर्मों के त्याग की बात भगवान् समझा रहे हैं उनका त्याग करके भी आपकी गृहस्थी बड़े अच्छे ढंग से चल सकती है।

प्रातः मैंने बताया था कि कर्म के दो आधार हैं कामना और भावना। जितने पवित्र कर्म हैं उनके पीछे भावना कारण होती है और जितने दूषित कर्म हैं उनके पीछे कामना कारण होती है। कामना व्यष्टिभाव से सम्बन्धित है और भावना समष्टि भाव से सम्बन्धित है। कामना में व्यक्ति अपनी पूर्ति की चाह रखता है और भावना में परमात्मा की पूजा की भावना रखता है। गीता के 18वें अध्याय में भगवान् ने बताया है कि –

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।

(गीता १८/४६)

जिससे सम्पूर्ण प्राणियों की प्रवृत्ति हो रही है और जो इन सम्पूर्ण में व्याप्त है, अपने कर्मों के द्वारा उसकी उपासना करो। उसकी अभ्यर्चना करके मानव–मात्र सिद्धि को प्राप्त कर सकते हैं।

मैं तो विदेशियों से भी कहा करता हूँ कि तुम्हारा क्या विश्वास है, इससे मेरा कोई मतलब नहीं। तुम किसको मानते हो, इससे मेरा कोई लेना–देना नहीं है। यदि तुम मनुष्य हो तो अपनी बुद्धि का प्रयोग करो क्योंकि तुम्हारे पास जो बुद्धि है वह भगवान् की सबसे बड़ी देन है। याद रखो बुद्धि के नाते ही तुम मनुष्य हो। यदि आप अपनी बुद्धि का प्रयोग नहीं कर रहे हैं इसका अभिप्राय यह है कि आप उसकी देन का अपमान कर रहे हैं, If you want to be religious, reasoning is the first step of religion. यह सांख्य शास्त्र की घोषणा है कि जब तक आप अपनी बुद्धि का प्रयोग नहीं करेंगे तब तक आप सत्य के रास्ते पर नहीं चल सकते। भगवान् ने गीता में भी यह बात बताई है –

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।

(गीता ४/३९)

कहा कि ज्ञान किसे मिलेगा? श्रद्धावान् को। श्रद्धा किसे कहते हैं? जैसे हमारे यहाँ संस्कृत के बहुत से शब्दों का दुरुपयोग हो रहा है। लोगों ने

अन्धविश्वास का नाम श्रद्धा रखा है जबकि व्याकरण की दृष्टि से यह अशुद्ध है, उसके विपरीत है। श्रद्धा शब्द का अर्थ होता है सत्य की धारणा करने वाली बुद्धि। श्रद्धा शब्द दो शब्दों से बना है–श्रत् और धा से। वैदिक विज्ञान के प्रकाश में यास्काचार्य ने निरुक्त में श्रद्धा शब्द की व्याख्या की है। 'श्रत् धा' अर्थात् सत्य को धारण करने वाली बुद्धि को श्रद्धा कहते हैं। आचार्य शंकर ने उसे आस्तिक बुद्धि कहा है। सत्य को धारण करने वाली बुद्धि से युक्त व्यक्ति ही ज्ञान का पात्र बन सकता है।

जिसकी बुद्धि सत्य को धारण करने में अक्षम है वह कभी ज्ञान का अधिकारी नहीं होता। अब पूछा गया भगवान् से कि सत्य को धारण करने वाली बुद्धि को हम कैसे प्राप्त करें? बुद्धि तो है लेकिन सत्य को धारण कर रही है या असत्य को धारण कर रही है या असत्य को ही सत्य मान कर धारण किए हुए है? भगवान् ने कहा कि सत्य को धारण करने वाली बुद्धि के लिए दो साधन अपनाने पड़ेंगे। कौन–कौन? 'तत्परः संयतेन्द्रिय।' तत् शब्द का अर्थ है ब्रह्म के, परमात्मा के या सत्य के जो तत्पर है, परायण है। जिसका चित्त हमेशा परमात्मा के ही चिन्तन में लगा हुआ है उसको तत्पर कहते हैं। यह तत्परता कैसे आयेगी? 'संयतेन्द्रिय' आपका चित्त परमात्मा में तब लगेगा जबकि वह विषयों से विमुख होगा या इन्द्रियों के प्रवाह से लौटेगा। इन्द्रियों के प्रवाह के साथ दौड़ता भी रहे और परमात्मा में भी लग जाए, दोनों काम होंगे क्या? असम्भव। यदि आपकी चेतना, आपका मन इन्द्रियों के प्रवाह में बाहर दौड़ रहा है तो वह कभी भी परमात्मा को विषय नहीं बना सकता इसलिए तत्पर होने के लिए, परमात्म परायण होने के लिए इन्द्रियों का संयमन करना अति आवश्यक है। जिसने विषयों से इन्द्रियों को समेट लिया है और अपने मन को उस परमात्मा में लगा दिया है तो परमात्मा में लगे हुए मन वाले व्यक्ति की बुद्धि सत्य को धारण करने वाली होती है। जो सत्य को धारण करने वाली बुद्धि है वही उस तत्त्वज्ञान की भाजन बनती है। जिस ज्ञान की बात भगवान् यहाँ बता रहे हैं उस ज्ञान का फल आगे बता रहे हैं –

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।

(गीता ४/३९)

जिस ज्ञान को प्राप्त करके वह तुरन्त परम शान्ति माने कैवल्य पद को प्राप्त कर लेता है। यहाँ सामान्य ज्ञान वा शास्त्र ज्ञान की बात नहीं है। जिस ज्ञान की यहाँ बात कर रहे हैं भगवान्, वह ज्ञान ब्रह्म ज्ञान है, तत्त्वज्ञान है, परम ज्ञान है। आप अपने मन को पहले इन्द्रियों की तरफ से समेटें तभी आप अपनी कामना

कर विजय पायेंगे। भगवान् ने कहा है –

न ह्ययन्न्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन।

(गीता ६/२)

जब तक आप सम्पूर्ण संकल्पों का त्याग नहीं करते तब तक आप योगी नहीं बन सकते। बिना योगी बने न तो आपका व्यक्तिगत जीवन, न पारिवारिक जीवन, न सामाजिक जीवन , न राष्ट्रीय जीवन ही उन्नत हो सकता है, यह बात याद रखना। सम्पूर्ण अनर्थों की जड़ वासना है और वासना व्यष्टि भाव से उत्पन्न होती है। व्यष्टिभाव में जब तक आपकी दृढ़ता रहेगी तब तक आप अशान्ति, अज्ञान, अभाव तथा भय से मुक्त नहीं हो सकते। एक सज्जन कहने लगे कि देश में बड़ी उन्नति हो रही है। क्या उन्नति हो रही है, कोई लक्षण बताओ? कहा कि अब तो सरकार ने प्रत्येक मुहल्ले में पुलिस चौकी स्थापित कर दी है। अच्छा आप बताओ कि प्रत्येक मुहल्ले में पुलिस चौकी होना उन्नति का लक्षण है या अवनति का? अवनति का। इसका अभिप्राय यह है कि अब आपके नगर की जनता चरित्रहीन हो गई है इसीलिए तो पुलिस की जरूरत पड़ी है। यदि आदमी सदाचार का पालन करता हुआ चरित्रवान है तो पुलिस चौकी की कोई आवश्यकता नहीं। चरित्रहीनता से ही तो अपराधों की वृद्धि होती है। जहाँ अपराध अधिक होता है वहीं पुलिस की जरूरत होती है। मनुष्य को मनुष्य हाँके अर्थात् रास्ते पर चलने की प्रेरणा करे, इससे बड़ा मनुष्यता के पतन का और क्या नमूना होगा? यह उन्नति का लक्षण नहीं है, यह तो पतन का लक्षण है। प्रत्येक मुहल्ले में डिसपैंसरी बन रही है, अस्पताल बन रहे हैं। बड़े–बड़े अस्पताल तो उस देश के व्यक्तियों के रोगी होने का नमूना हैं। रोग बड़ता है तो अस्पताल की जरूरत होती है। चरित्र बिगड़ता है तो पुलिस चौकी की आवश्यकता होती है। ये उन्नति के नहीं अवनति के लक्षण हैं

मैं आप लोगों से निवेदन कर रहा था कि इन सारे अनर्थों की जड़ है व्यक्तिवाद। व्यक्तिवाद मनुष्य में असुरक्षा की भावना जागृत करता है। असुरक्षा की भावना से युक्त होने पर ही मनुष्य अपनी सुरक्षा के लिए संग्रह में प्रवृत्त होता है। आज रहेगा, कल नहीं रहेगा तो क्या करेंगे? संग्रह करेंगे। संग्रह की वृत्ति पूंजीवाद को जन्म देती है। व्यक्तिवाद कारण है पूंजीवाद का। पूंजीवाद कारण है समस्त अनर्थों का क्योंकि वहाँ दौड़ लग जाती है कि इसके पास इतना है, मेरे पास तो अभी इतना ही है। इतने से इतने के दौड़ में कभी किसी को शान्ति मिली है? शान्ति का रास्ता क्या है? शान्ति का रास्ता वही अध्यात्मवाद है जिसकी चर्चा

मैं आप लोगों से कर रहा हूँ। इस व्यक्तिवाद से ही भोग का रास्ता प्रशस्त होता है। याद रखें ईश्वरवाद, प्रकृतिवाद तथा कर्मवाद आदि जितने वाद हैं इन सब ने मनुष्य को कोई शान्ति नहीं दी है। जब भी मनुष्य को शान्ति मिली है अध्यात्मवाद से मिली है, ब्रह्मवाद से मिली है।

उसी अध्यात्मवाद और ब्रह्मवाद की बात आपको गीता समझाती है। यह आपके लिए केवल मरने के बाद की सीख नहीं है, जीते जी आपका व्यक्तिगत जीवन, पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन तथा राष्ट्रीय जीवन किस प्रकार से सुव्यवस्थित और सम्मुन्नत हो सकता है, इसकी विधा समझाती है इसलिए आप इस तत्त्व विज्ञान को समझें और तदनुकूल जीवन जीने की विधा अपनावें। मैंने गीता के छटे अध्याय के दूसरे श्लोक की व्याख्या संक्षेप में आपको बताई है जिसमें भगवान् ने कहा है –

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन।।

(गीता ६/२)

योगी होने की जो आगे की प्रक्रिया है वह भगवान् कहते हैं कल बता देना।

हरि ॐ तत्सत्

उदयपुर
20.03.1998
प्रातः

७

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ।

करुणानिधान भगवान् की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यह मेरी आन्तरिक शुभ कामना। कल मैंने आप लोगों को एक बात समझाई थी कि आपके इस जीवन में दो प्रकार की शक्ति काम कर रही है – एक चेतना शक्ति और दूसरी प्राण शक्ति। एक बल का आधार है और दूसरी ज्ञान का। किसी भी कार्य की सिद्धि में इन दोनों का प्रयोग आवश्यक होता है। बलहीन ज्ञान और ज्ञानहीन बल, ये दोनों ही कार्य की सिद्धि में अक्षम होते हैं। आप लोग रामायण तो पढ़ते हैं। उसमें सुन्दर काण्ड में प्रसंग आता है। भगवान् मारुति जब लंका के लिए प्रस्थान करते हैं तो उनकी परीक्षा लेने के लिए देवताओं ने सुरसा को भेज दिया। सुरसा जब परीक्षा लेकर के संतुष्ट होती है तो भगवान् मारुति से कहती है –

राम काजु सबु करिहहु तुम्ह बल बुद्धि निधान।
आसिष देइ गई सो हरषि चलेउ हनुमान।।

(रा० ५/२)

अभिप्राय यह कि जो बल और बुद्धि दोनों से युक्त नहीं है, कभी राम कार्य की पूर्ति नहीं कर सकता। राम कार्य माने आत्म कार्य। राम राज्य का एक अर्थ आत्म राज्य भी होता है। उसे स्वराज्य भी कहते हैं। उस स्वराज्य, राम राज्य वा आत्म राज्य में हेतु है बल और बुद्धि का योग। किसी भी क्रिया को

सम्पादित करने के लिए बल और बुद्धि का योग अति आवश्यक है। यदि आप आत्मा की उन्नति का साधन अपनाना चाहें तब भी बल और बुद्धि के योग की आवश्यकता है। आपका शरीर निर्बल है और आपको साधना में बैठना है तो एक आसन से एक घण्टे तक बैठना दूर रहा दस मिनट बाद आप अपने पांव बदलने लगेंगे। यह सब स्थिति क्यों आती है? क्योंकि शरीर में बल नहीं है। शरीर निर्बल है। वेद की यह घोषणा है –

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिंगात्।

(मुण्डक0 ३/२–४)

जो बलहीन लोग हैं वो इस आत्म तत्त्व का साक्षात्कार नहीं कर सकते इसलिए बल की आवश्यकता है। यदि बुद्धि ही नहीं है तो आप क्या करेंगे? आप लोगों ने कर्नल टॉड का लिखा हुआ राजस्थान का इतिहास पढ़ा होगा। बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ है। कर्नल टॉड लिखता है कि राजपूतों के पास इतनी शक्ति थी जितनी कि रोमन लोगों के पास नहीं थी। वो अपनी शक्ति के द्वारा केवल भारत पर नहीं विश्व पर शासन करने की क्षमता रखते थे। दुर्भाग्य यह था कि उनके पास बुद्धि नहीं थी। बुद्धि न होने के कारण आपस में ही लड़ कर मर गए। अपनी शक्ति का नाश कर लिया। बल है, बुद्धि नहीं है, क्या करोगे? बुद्धिहीन बल का परिणाम अच्छा नहीं निकलता। बुद्धि है बल नहीं है तब भी आप कुछ नहीं कर सकते। बड़े बुद्धिमान हो, बहुत बड़ी योजना आप बना कर दे सकते हो लेकिन क्रियान्वित करने की क्षमता नहीं है तो क्या करोगे आप? वो भी व्यर्थ है। बल का आधार है आपका प्राण। बुद्धि का आधार है आपका चेतन। बल और बुद्धि दोनों का एक साथ प्रयोग करने का नाम है योग। छठा अध्याय आत्म संयम योग है। उसमें सर्वप्रथम भगवान् ने इन्हीं दोनों का वर्णन किया है। पहले श्लोक में क्या कहा?

अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः।।

(गीता ६/१)

अब अनाश्रित होना, कर्मफल का आश्रय त्यागना किसका काम है? बुद्धि का। यह बल का काम नहीं है। बल का काम तो कर्म करना है लेकिन कर्म के फल के आश्रय का त्याग जो है वह तो बुद्धि का विषय है। बुद्धि यदि विवेकवती है तो कर्म के फल का आश्रय लिए बिना वह कर्म में प्रवृत्त होगी और बल से कर्म का सम्पादन होगा। कर्म फल का आश्रय त्याग करना पहला काम है और कार्य कर्म में प्रवृत्ति दूसरा। यदि बल नहीं है तो कार्य कर्म में प्रवृत्ति कहां

से होगी? जो बुद्धि और बल दोनों का प्रयोग एक साथ करना जानता है भगवान् कहते हैं कि –

स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः।।

वही संन्यासी है वही योगी है जो अग्नि का त्याग करता है या जो कर्म का त्याग करता है वह योगी और संन्यासी नहीं होता। इसी बात को भगवान् ने दूसरे श्लोक में और स्पष्ट किया है।

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।

(गीता ६/२)

हे पाण्डव! जिसे संन्यास ऐसा कहा जाता है, उसी को तू योग भी जान। संन्यास और योग दोनों एक हैं? फिर एक ही शब्द का प्रयोग करते दो शब्दों का प्रयोग करने का क्या प्रयोजन था? कहा कि नहीं, एक तो नहीं है, हैं तो दो लेकिन एक के बिना दूसरे की सिद्धि नहीं होती। एक दूसरे पर दोनों अवलम्बित हैं। भगवान् ने कहा अभ्यास और वैराग्य,ये दो पहलू हैं। महर्षि पतंजलि ने जहाँ पर चित्त के संयमन की बात कही है वा चित्त वृत्ति के निरोध की बात कही है, वहाँ उन्होंने साधन के रूप में दो बातें बताई – **अभ्यास वैराग्याभ्यां**। इसी को गीता के छटे अध्याय में भगवान् आगे कहेंगे –

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।

(गीता ६/३५)

अभ्यास माने –

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः।

(यो0 सू0 १/१३)

तत्र माने उस आत्म स्वरूप में। उस चैतन्यघन में स्वयं को स्थित करने के प्रयत्न का नाम तो हुआ अभ्यास लेकिन वह चित्त आपका चैतन्य में कब स्थित होगा? वह तब स्थित होगा जबकि जहाँ पहले लगा हुआ है वहाँ से हटाओ। जहाँ पहले लगा हुआ है यदि वहाँ से हटा नहीं तो यह स्थित कैसे हो जायेगा? अभ्यास की सिद्धि किससे होती है? वैराग्य से। वैराग्य माने जहाँ चित्त लगा हुआ है वहां से हटाना। चित्त कहाँ लगा हुआ है? महर्षि पतंजलि कहते हैं कि चित्त लगा हुआ है दृष्ट और अनुश्रविक विषयों में। कुछ विषय देखे हुए हैं और कुछ केवल सुने हुए हैं। देख करके ही कामना जागृत नहीं होती। सुन करके भी कामना जागृत होती है। आप सोचिए कि आपके हृदय में जो वासना या कामना जागृत होती है वह क्या केवल देख कर ही होती है? नहीं, सुन करके भी होती है, देख करके

भी होती है। क्या और कोई तीसरा उपाय है जिससे यह कामना जागृत होती हो? नहीं, बिल्कुल नहीं। या तो सुने हुए की कामना आप करते हो या देखे हुए की करते हो। अपने पड़ौसी के पास देख रहे हैं आपके पास नहीं है तो आपको कामना होती है। आपने सुना है कि कोई ऐसी वस्तु है जिससे ऐसा सुख मिलता है तो सुने हुए की तथा देखे हुए की कामना होती है। कामना के दो ही हेतु हैं इसीलिए महर्षि पतंजलि ने कहा है कि –

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्।

(यो० सू० १/१५)

देखे हुए और सुने हुए विषयों के प्रति जो हमारी वितृष्णा है, जो पाने की चाह है, उसको अपने बस में कर लेना यानी उस तृष्णा का त्याग कर देना, मन को उधर न जाने देना, यह वैराग्य है। राग रहित होने की प्रक्रिया यहाँ से शुरू होती है। उसी को भगवान् ने कहा –

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।

अभ्यास के साथ वैराग्य होना जरूरी है। जब तक आप अपने मन को जहाँ लगा हुआ है वहाँ से नहीं खींचेंगे तो जहाँ लगाना चाहते हैं कैसे लगायेंगे। वहाँ तो तभी लगेगा जहाँ पहले लगा है वहाँ से हट जाए। जहाँ लगा है वहाँ से हटने का नाम वैराग्य। जहाँ आप चाहते हैं वहाँ पर लगा देने के प्रयत्न का नाम अभ्यास है। संन्यास माने वैराग्य–जहाँ लगा है वहाँ से सम्यक प्रकारेण न्यासः संन्यासः। जब सन्यास की दीक्षा होती है तो वहाँ सूर्य को साक्षी देकर तीन बार यही प्रतिज्ञा करते हैं – सर्वं संन्यस्तम्, सर्वं संन्यस्तम्, सर्वं संन्यस्तम्। गुरु के निर्देशानुसार संन्यास हो जाता है। है तो संकल्प का ही सारा खेल। भगवान् कहते हैं बिना संन्यास के योग नहीं होता। योग माने आत्मस्थिति।

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।
तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।

(यो० सू० १/२,३)

स्वस्वरूप में स्थिति बिना संन्यास के नहीं होती। भगवान् ने कहा कि –

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।

(गीता ६/२)

जिसे संन्यास ऐसा कहा गया है उसे ही तू योग जान।

यहाँ पर एक बात और बताऊँ– बौद्ध विचारधारा में और वैदिक विचारधारा में क्या अन्तर है। भगवान् बुद्ध की बात मैं नहीं कहता, वे परम

आस्तिक थे। हमारे यहाँ तो वे भगवान् विष्णु के अवतार माने जाते हैं लेकिन बौद्धों ने बाद में एक अनर्थकारी रास्ता अपनाया। वह अनर्थकारी रास्ता था कि उन्होंने परमात्मा की सत्ता को ही समाप्त कर दिया। भगवान् बुद्ध कभी परमात्मा की सत्ता को अस्वीकार नहीं किए क्योंकि वे किसी नए धर्म के संस्थापक नहीं थे, वो तो एक समाज में आई हुई विकृति के सुधारक थे। आप उनका धम्मपद पढ़िए तो ऐसा लगेगा कि भगवान् कृष्ण ही बोल रहे हैं। गीता और धम्मपद के विचारों में हमें कोई अन्तर दिखाई नहीं दिया। मैंने तो गम्भीरता से अध्ययन किया है बौद्ध ग्रन्थों का। वहाँ पर जब किसी ने ईश्वर के विषय में पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि यह अति प्रश्न है। उन्होंने इस विषय में एक उदाहरण दिया। वह उदाहरण मुझे बहुत प्रिय लगता है।

भगवान् बुद्ध ने कहा कि एक व्यक्ति शराब पीकर के मदान्ध हो गया। वो रास्ते में चला जा रहा था। रास्ते में एक कुँआ था। नगर का सारा मल उस कुँए में गिरता था। वह शराब के नशे में उस कुँए में गिर गया। जब कुँए में गिर गया तो वह चिल्लाया कि मुझे इस कुँए में से कोई निकाल लो– कोई निकाल लो। एक दयालु व्यक्ति के कान में आवाज़ पड़ी। वह दौड़ करके आया। उसने रस्सी ली और कुँए में लटका दी और कहा – भाई! इसे पकड़ लो मैं तुम्हें खींच लेता हूँ। कुँए में पड़ा हुआ व्यक्ति उससे कहता है कि यदि तुम मेरे चार प्रश्नों के उत्तर दे दो तब मैं इस कुँए से निकलूंगा। कहा कि चार प्रश्न तुम्हारे क्या हैं? उसने कहा कि पहले बताओ कि यह कुँआ बनाया किसने है? दूसरा यह कुँआ कब बना? तीसरा इसमें यह मल–मूत्र कहाँ से आ गया? चौथा, मैं इसमें कैसे गिर गया? कहा कि यदि तुम मेरे इन चारों प्रश्नों का उत्तर दे दोगे तब मैं बाहर निकलूंगा। वह कहता है कि यह कुँआ किसने बनाया, मैं यह नहीं जानता। कब बना, यह भी नहीं जानता। इसमें मल–मूत्र कहां से आया, यह भी मैं नहीं जानता। आप श्रीमान्, इसमें कब गिर गये, यह भी मैं नहीं जानता। आपके चारों प्रश्नों का मेरे पास कोई उत्तर नहीं है लेकिन मैं इतना जानता हूँ कि तुम इस कुँए में गिरे हो, मेरी रस्सी पकड़ो तो मैं तुम्हें बाहर निकाल सकता हूँ। बाहर निकल कर तुम छानबीन कर लेना कि यह कुँआ किसने बनाया, कब बनाया, इसमें मल–मूत्र कहाँ से आया और तुम इसमें कैसे गिरे? यदि तुम कहो कि नहीं पहले चारों प्रश्नों के उत्तर चाहिए तो यह लो मैं रस्सी छोड़कर जा रहा हूँ। भगवान् बुद्ध ने कहा कि इसी रूप से यदि कोई संसारी व्यक्ति मेरे से यह पूछे कि यह दुनिया किसने बनाई, कब बनी, इसमें दुःख कहाँ से आ गया और हम सब जीव इस दुनिया में

कैसे आ गए, इन चारों प्रश्नों का उत्तर मेरे पास नहीं है। इतना मैं जानता हूँ कि तुम्हारे जीवन में दुःख है, उस दुःख का कारण है, उसको दूर किया जा सकता है, उसके लिए मेरे पास उपाय है। यदि तुम मेरे पास आओ तो मैं तुम्हें उपाय बता दूंगा। इस दुःख से जब मुक्त हो जाना तब तुम इसका पता लगाना। अभी यह पूछना कि दुनिया किसने बनाई, कब बनाई, इसमें दुःख कहाँ से आया और जीव इसमें कैसे गिर गया, ये अति प्रश्न हैं। यह ईमानदारी की बात है। यह कह देना कि यह दुनिया भगवान् ने बनाई यह कल्पना की बात है। भगवान् को क्या गर्ज पड़ी थी दुनिया बनाने की?

भगवान् बुद्ध जब गृह त्याग किये तो सबसे पहले वे एक सांख्यचार्य के पास गए। छः वर्ष तक वो उन आचार्य के पास रह कर के सांख्य सिद्धान्त का अध्ययन किये और उनके द्वारा बताई हुई साधना को अपना कर साधना करने लगे। सांख्य मार्ग विरक्त का मार्ग है, संन्यास का मार्ग है। उसमें साधना के द्वारा सत्य को जानने की प्रक्रिया बताई गई है। उसमें विश्वास के लिए स्थान नहीं है, मान लेने के लिए स्थान नहीं है। सांख्यवादी कहता है कि पहले जानो फिर मानो। बिना जाने मानो नहीं। That is an analytical process.

आजकल के वैज्ञानिक जिस Theory को अपनाए हुए हैं वे सांख्यवादी वैज्ञानिक हैं। उसी Theory के अनुसार वे काम करते हैं। भगवान् बुद्ध सांख्यवादी थे। वहीं से वो साधना करते–2 जब ऐसी स्थिति में पहुँचे कि उनको आत्म–साक्षात्कार नहीं हुआ तो निराश हो गए। जब वो निराश हो गए तो एक पीपल के पेड़ के साथ सहारा लेकर बैठ गए। शरीर उनका केवल कंकाल रह गया था। जब वे बैठे हुए थे तो उन्होंने एक आवाज़ सुनी। एक नर्तकी रास्ते में गाते हुए जा रही थी कि वीणा के तार को इतना मत खींचो जिससे कि वह टूट जाए। जब यह शब्द बुद्ध के कान में पड़ा तो वे चौंक पड़े कि जैसे यह बात वह उन्हीं से कह रही है। उन्होंने सोचा कि मैं तो अपने वीणा का तार इतना खींच रहा हूँ कि टूटने ही वाला है। अभी अपना राम–नाम सत् होने वाला है। वो चौंक पड़े और आँख खोल दिए तो उस नर्तकी की दृष्टि उन पर पड़ गई। उसने देखा कि कोई कंकाल महात्मा बैठे हुए हैं और भूख से तड़प रहे हैं। उसने कहा कि महाराज आप थोड़ा रुकिये। उसने दौड़ करके जाकर खीर बनाई और लाकर महात्मा को समर्पित की। जब खीर खा ली तो उनके चार शिष्य जो साथ में थे उन्होंने देखा कि इतने वर्षों की तपस्या के पश्चात् इन्होंने नर्तकी के हाथ की खीर खा ली इसलिए यह पथ भ्रष्ट हो गये हैं। इनका साधन भ्रष्ट हो गया है इसलिए वे चारों

उन्हें छोड़कर चले गए। भगवान् बुद्ध खीर खाकर पुनः उसी वृक्ष के नीचे बैठ गये। बैठते ही उनकी चेतना मूलाधार से चलकर सीधा ब्रह्मरन्ध्र तक पहुंच गई। अभी तक क्यों नहीं पहुंची थी, जानते हो? अहंकार बाधक था।

मेरे गुरुदेव कहा करते थे कि साधन का अहंकार साधक के लिए सबसे ज्यादा खतरनाक है। साधना का अहंकार साधक को उच्चतम अवस्था में पहुंचने में बाधा उपस्थित करता है। भगवान् बुद्ध ने खीर खा ली तो साधना का अहंकार वहीं समाप्त हो गया। साधना का अहंकार समाप्त होते ही उनकी चेतना शक्ति मूलाधार से उठती हुई ब्रह्मचक्र में जाकर स्थित हो गई। ब्रह्मचक्र में अवस्थित होते ही उन्होंने परम तत्त्व का साक्षात्कार किया जिसे समाधि कहते हैं। अब उस असम्प्रज्ञात समाधि में पहुँचकर जब उन्होंने अपने यथार्थ स्वरूप को देखा, वहाँ कोई रूप तो होता नहीं, न कोई रंग ही होता है। वहाँ तो दिव्य ज्ञान स्वरूप अनन्त चैतन्य ही होता है। उस अवस्था में पहुँचा हुआ योगी तो यही अनुभव करता है। उस अवस्था में वे समाधि अवस्था में बैठे हुए थे। बहुत दिनों बाद जब उनका चित्त पुनः व्युत्थान अवस्था में आया यानी जब वे समाधि से लौटे, तब उन्होंने कहा कि अब तो मैं बुद्धत्व को प्राप्त कर लिया हूँ। अब मैं दुनिया को समझाऊँगा की यही एक रास्ता है जिससे मनुष्य दुःख से मुक्त हो सकता है। इस अवस्था को प्राप्त करने के पश्चात् भगवान् बुद्ध ने बताया कि दुनिया किसने बनायी, कब बनी और दुनिया में जीव कब गिर गया? यह तो खोजने की बात है, समझने की बात है इसलिए भगवान् बुद्ध ने कहा कि यह अति प्रश्न है। माने हुए ईश्वर में विश्वास करके साधना से विमुख हो जाना, विरत हो जाना, भगवान् जो करेगा वही होगा, यह तो कायरों की बात है, प्रमादियों की बात है। जो सत्य के अभिप्सु हैं, वो केवल मान करके बैठते नहीं। भगवान् बुद्ध ने कहा कि ये धारणाएँ साधकों के लिए गलत हैं। उन्होंने ये बातें साधक के लिए कही थीं, आम जनता के लिए नहीं कही थी।

ईसाई धर्म में केवल एक ही परमात्मा का पुत्र हुआ बाकी पापी के पुत्र हुए, उसका कारण यही था। जेसस क्राईस्ट ने बाईबिल New Testament में या Sermon on the mount में बहुत सुन्दर संदेश दिया है। वह एक प्रकार से गीता का ही संदेश है। जो वे भारत से पढ़ कर तथा समझ कर गए थे वही उन्होंने बताया था। जेसस क्राईस्ट 11 वर्ष की आयु में रवना नाम के यहूदी के साथ बेबीलोनिया से भारत आए। उन दिनों भारत और बेबीलोनिया पड़ौसी के समान थे। आप सुने होंगे सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् सेल्यूकस जब आया तो चाणक्य

के निर्देश में चन्द्रगुप्त ने आक्रमण करके काबुल तक का इलाका जीत लिया और उसके पश्चात् जब उससे आगे बड़ा तो सेल्यूकस ने अपनी पुत्री एलन को समर्पित करके उसने सन्धि कर ली। सन्धि में पांच प्रान्त उसने दहेज में दिए। उस समय भारत की सीमा कहाँ तक रही होगी, जरा आप लोग सोचिए। एक तरफ तो सेल्यूकस की सीमा थी, यूनान के दूसरी तरफ भारत की सीमा थी। सन्धि वहीं हुई। उसके थोड़े वर्षों बाद ही क्राईस्ट का जन्म हुआ है। यह जो स्थिति थी भारत की उसमें भारत और बेबीलोनिया दूर–दूर नहीं थे। दोनों आपस में पड़ौसी देश थे। बेबीलोनिया से रवना नाम का यहूदी क्राईस्ट को लेकर भारत आया और पुरी में ले जाकर उसे दीक्षित किया। पुरी उन दिनों ज्ञान–विज्ञान का केन्द्र था। छः वर्ष क्राईस्ट पुरी नें रहा। उसके बाद फिर वह अधिक अध्ययन करने के लिए बनारस में आया। 4 वर्ष काशी में रहा, उसके बाद वह नेपाल में गया जहाँ भगवान् पशुपति नाथ का मन्दिर है। फिर वहां से तिब्बत गया। दो वर्ष वहां रहा, फिर लौटकर लद्धाख होते हुए उसी रास्ते बेबीलोनिया गया। 18 वर्ष उसके इस क्षेत्र में बीते। इस प्रकार से 12 में 18 जोड़ दो तो 30 वर्ष होते हैं। 30 वर्ष की आयु का बाईबिल में कोई जिक्र नहीं है।

पश्चिम के लोग इसकी पहले खोज करते रहे। एक व्यक्ति रशिया का था, उसने लद्धाख के एक बौद्ध विहार में एक प्राचीन लेख पाया। उस लेख के आधार पर उसने ईसा मसीह द्वारा लिखी हुई उसकी जीवनी पाई और उसने उसको प्रकाशित किया। ऐसी दो तीन पुस्तकें मैं अमेरिका से लाया हूँ। मेरे पुस्तकालय में रखी हुई हैं। Jesus lived in India में लिखा है कि जेसज क्राईस्ट ने अपने शिष्यों को बताया है कि तुम्हें भी उतना ही पवित्र होना चाहिए जैसे तुम्हारा स्वर्गीय पिता पवित्र है। पिता पुत्र का सम्बन्ध वैष्णव समाज में है क्योंकि वह वैष्णव समाज में दीक्षित था इसलिए उसने यह बात वहाँ जाकर प्रचारित की। उस वैष्णव समाज में यह भी कहा जाता है कि I am son of God. I and my father both are one. इस वैष्णव सिद्धान्त को विशिष्टाद्वैत कहते हैं। तुलसीदास जी ने अपनी रामायण में भी यही क़हा है–

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी।।

(रा0 ७/११७–२)

गीता में भी यही कहा गया है –

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

(गीता १५/७)

क्राईस्ट की मृत्यु के ३०० वर्ष बाद बाईबिल लिखी गई। सेंट पाल तथा मैथस जब हुए तो उन्होंने इसी बात को तोड़–मरोड़ कर लिखा कि परमात्मा का पुत्र तो केवल क्राईस्ट था बाकी तो एडम और ईव जो कि पापी थे, उसके पुत्र थे। कहने का भाव कि मनुष्य पापी की सन्तान है।

यही इतिहास आपको कुर्आन में मिलेगा। यही इतिहास आपको बाईबिल में मिलेगा– Old Testament तथा New Testament में। तुम्हारे मां–बाप जो मूल में हुए वे पापी थे इसलिए तुम जन्म से पापी हो। हम पापी हैं, इस पाप से मुक्त कर दो, यह कुसंस्कार हमारे में भी आ गया। यह कुसंस्कार भारत में प्रचारित हुआ विशेषकर केरल में। क्राईस्ट के दो शिष्य थे पीटर और थॉमस। जब क्राईस्ट को फांसी दे दी गई तो पीटर भाग कर आया। उसने अपना सारा जीवन तक्षशिला में बिताया। उसकी कब्र वहाँ पर है। थॉमस की कब्र भी केरल में अलेपी के पास है, मैं देखा हूँ। जब बाईबिल लिखी गई तो केरल में भी प्रचार शुरू हो गया। हम पापी की सन्तान हैं, पापी हैं, यह कुसंस्कार धीरे–धीरे भारत में भी फैल गया। किसी समझदार ने एक श्लोक भी लिख दिया–**पापोऽहं**– मैं पापी हूँ। पाप ही करता हूँ। मेरी आत्मा भी पापी है। पाप से ही मैं उत्पन्न हुआ हूँ। मेरा बाप भी पापी है। अरे मूर्खो! यह रोग कहाँ से आया तुम्हारे में? वेद कहता है–**अमृतस्य ते पुत्राः**। गीता कहती है कि तुम ईश्वर की सन्तान हो –

पिताऽहमस्य जगतो माता धाता पितामहः।

(गीता ९/१७)

तुम भगवान् के सामने कहते हो मैं पापी, मेरी आत्मा पापी, मेरे माँ–बाप पापी, मेरा दादा पापी तथा मैं पाप ही करता हूँ। यह तुम्हारी दीनता नहीं, हीनता नहीं, यह तो तुम्हारी मूर्खता है। उस मूर्खता के संस्कार के नाते तुम अपने आपको पापी मानते हो। जो अपने आपको पापी मान लिया है उसको दुनिया की कोई शक्ति पवित्र नहीं कर सकती, याद रखो।

मैं आपको बताना चाहता हूँ कि इस प्रकार की मनुष्य में गलत धारणाएं आ जाती हैं जहाँ से मनुष्य का पतन हो जाता है। भगवान् बुद्ध ने मनुष्य के जीवन से अन्धविश्वास को दूर करने के लिए कहा कि तुम केवल मान कर मत बैठो, सत्य को जानने का प्रयत्न करो। यह उनका निर्देश था। यह सांख्य का सिद्धान्त है।

योग सिद्धान्त में बताया गया है कि तुम Analysis करो क्योंकि Analysis करके पता चलेगा कि दुनिया में जो कुछ कार्य है उसका कारण भी है। उस कारण को तुम जानते हो या नहीं? कार्य और कारण में अन्तर क्या होता है?

कार्य हमेशा सीमित होता है और कारण असीम होता है। इसी सिद्धान्त पर तो वैज्ञानिक खोज कर रहे हैं कि कारण सीमित नहीं हो सकता। जब उन्होंने पहले स्वीकार किया कि सृष्टि का कारण परमाणु है तो उनको सन्तुष्टि नहीं हुई। उन्होंने परमाणु को तोड़ा तो उनको इलैक्ट्रान, प्रोट्रॉन, न्युट्रॉन आदि के दर्शन हुए। उन्होंने निश्चय किया कि परमाणु कारण नहीं हैं। यह तो पदार्थ है जिससे परमाणु बना है। Because atom is component and cause must be non-component. Component atom cann't be cause. Then what is cause?

जब पदार्थ को तोड़ा तो निश्चय किया कि यह कारण नहीं हो सकता क्योंकि यह एक नहीं अनेक है। पहले तीन थे अब चार हो गए हैं इसलिए कारण नहीं हैं। फिर इलैक्ट्रान को तोड़ा। जब इलैक्ट्रान को तोड़ा तो वह ऊर्जा में परिवर्तित हो गया। जब ऊर्जा में परिवर्तित हो गया तो अब उन्होंने स्वीकार कर लिया कि Energy is the cause of matter. किसी वैज्ञानिक से पूछिए – Can you describe what energy is? No, energy is limitless, formless, countless, colourless, weightless. It means that is inaffable, no body can describe it. Whatever is beyond description that is called energy.

यही सारे विशेषण हम प्रकृति के लिए भी लगाते हैं। वो अव्यक्त है, अनन्त है और उसके विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। आचार्य शंकर ने कहा कि वह सद्–असद् विलक्षणा अनिर्वचनीया पराशक्ति है। परा शक्ति माने Energy. All prevasive energy is beyond form and beyond name. That is really unique and wonderful. You cann't say anything about that. यही आचार्य शंकर भी कहते हैं और यही भगवान् भी गीता में कहते हैं–

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।

(गीता ७/१४)

जो मेरी शरण में आता है वही मेरी माया से पार होता है। अब आप बताईए जो वैज्ञानिक कह रहे हैं वही तो वेद कह रहे हैं, गीता कह रही है और उपनिषद् कह रहे हैं। इस सत्य का उद्घाटन करने वाले ऋषियों ने कहा कि जब तुम कार्य–कारण सम्बन्ध को समझोगे तो इस रहस्य को जानोगे। जैसे प्रकृति के पदार्थों का कारण है ऐसे ही तुम्हारे अन्दर चेतन है। यह चेतन सीमित है या असीम? कहा कि सीमित है तो इसका कारण जरूर होगा और वह कारण असीम होगा। जो कुछ सीमित है वह कार्य है और जो असीम होगा वह कारण है। यदि

इस सिद्धान्त को स्वीकार करें तो आपको विश्वास करना ही पड़ेगा कि आपकी चेतना सीमित है इसलिए आपकी चेतना का कारण कोई असीम तत्त्व है। असीम तत्त्व को या तो सांख्य की प्रक्रिया से जानें या योग की भाषा में मानें।

हमारे यहाँ गणित के विद्वान् जानते हैं कि किसी भी सवाल को हल करने के लिए कुछ अंकों को स्वीकार करना पड़ता है। जो अंक स्वीकार किए जाते हैं वो जाने हुए नहीं होते, माने हुए होते हैं। बिना माने क्या आप गणित के सवाल को हल कर सकते हैं? नहीं कर सकते। इसी प्रकार योगी कहता है कि तुम स्वीकार करो कि तुम्हारे मूल में अनन्त है। उस अनन्त को स्वीकार करके तुम अपने चित्त को उस अनन्त में लगाने की कोशिश करो। Whatever is limited, whatever is finite, you should try to go beyond that. When you will go beyond that then you will realise ultimate truth.

पहले आप मान करके आगे बढ़िए फिर जान भी जाओगे। यह प्रक्रिया योग की है। सांख्य कहता है कि नहीं पहले जानो फिर मानने की बात करना। ये दोनों प्रक्रियाएं सांख्य और योग की हैं। दोनों आपको अपने लक्ष्य की ओर ले जाती हैं इसलिए भगवान् ने कहा है कि –

यत् सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति।।

(गीता ५/५)

कहा कि तमु सांख्य के द्वारा जहाँ जाते हो योग के द्वारा भी वहीं पहुंचोगे इसलिए सांख्य और योग, दोनों दो नहीं हैं। सांख्य और योग दोनों एक हैं। एक हैं लक्ष्य के नाते। अब इस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए ही मैं आपको बता रहा था कि आपके पास दो साधन हैं – प्राण और चेतना। चेतना माने बुद्धि। बुद्धि से आप जहाँ लगे हुए हो वहां से अपने आपको उठाओ। कहाँ लगे हुए हैं आप ? जहाँ लगे हैं वहाँ अनेकता है। एकता में लग जाएं तो मामला ही साफ हो जाए। इसलिए पतंजलि कहते हैं कि तुम अपने आप को एक जगह बाँध दो। जो तुम्हें बहुत प्रिय है उसी में अपने आपको लगा दो। जरूरी नहीं कि परमात्मा में ही लगाओ – **यथाभिमतध्यानाद्वा।** (यो0 सू0 १/३९) जो तुम्हें प्रिय लगता है वहाँ अपने आपको लगा दो। जब उसमें लगा दोगे तो क्या होगा? तुम्हारा चित्त एकाग्र होने का अभ्यस्त हो करके तादात्म्य हो जाएगा। **त्रयमेकत्र संयमः।** (यो0 सू0 ३/४)

धारणा, ध्यान और समाधि के लिए हमारे यहाँ अनेक प्रकार के साधन बताये गए हैं। यह जो मूर्ति पूजा शुरू हुई यह मूर्ति पूजा आरती करने के लिए नहीं

बनी थी। जब विकृति हो जाती है तो धीरे–धीरे व्यक्ति कहीं का कहीं पहुंच जाता है। यह मूर्ति पूजा बनी थी ध्यान के लिए। पूजा माने चिन्तन–

चित्त हो मूर्ति में मूर्ति हो चित्त में,
बने तब प्राण आधार की पूजा।

यह पूजा की प्रक्रिया थी। पूजा का अभिप्राय यह नहीं होता कि फूल–माला लो चढ़ाओ, आरती करो, प्रसाद बांटो और चले जाओ। ध्यान के लिए अवलम्बन चाहिए। अवलम्बन किसका लिया जाए? हमारे यहाँ प्राचीनतम जो मूर्ति मिली है वह शिवलिंग है। कई–कई हज़ार वर्षों के पुराने शिवलिंग मिले हैं। प्राचीन से प्राचीन जो आपको मन्दिर मिलेगा, वह शिव मन्दिर मिलेगा। शिव की मूर्ति वहाँ नहीं है, शिवलिंग है। शिवलिंग किसका प्रतीक है? हिरण्यगर्भ का। वेद में सर्वप्रथम प्रकृति का जो परिणाम हुआ उसे शिवलिंग कहते हैं। सर्वप्रथम प्रकृति जब चैतन्य के प्रकाश से प्रकाशित होकर गतिशील हुई तो उसका यह परिणाम हुआ कि वह अण्डाकार में परिवर्तित हो गई। Energy first appear into form of Golden egg. वह जिस प्रकार से अण्डाकार में परिणत हुई उसको कहते हैं हिरण्यगर्भ और हमारी भाषा में उसे ब्रह्माण्ड कहते हैं। ब्रह्माण्ड माने बड़ा अण्डा। ब्रह्म माने बड़ा, अण्ड माने अण्डा इसलिए ब्रह्माण्ड माने बड़ा अण्डा। प्रकृति बड़े अण्डे के रूप में आविर्भूत हुई। लोग ब्रह्माण्ड तो कहते हैं लेकिन अर्थ नहीं जानते क्या है।

एक बार मैं अमरीका की यूनिवर्सिटी में बोल रहा था। वहाँ पर प्रश्न आया कि बाईबिल कहती है कि यह पृथ्वी चपटी है। मेरे से पूछा एक विद्वान् ने कि आपके दर्शन में पृथ्वी का क्या रूप है? मैंने पूछा कि वैज्ञानिक क्या मानते हैं? कहता है कि वैज्ञानिक तो इसको गोल मानते हैं। मैंने कहा हमारे यहाँ जानते हो पृथ्वी के लिए एक शब्द है। कहा कि क्या शब्द है? भूगोल। भूगोल माने पृथ्वी गोल। भूगोल शब्द कल नहीं बना है। वही भूगोल शब्द तुम्हारे यहाँ ग्लोब बना है। भूगोल ग्लोब कैसे बन गया? भूगोल हमारे यहाँ बाएँ से दाएँ लिखते हैं। भूगोल जब दाहिने से बाएं लिखेंगे तो गोल भू लिखा जाएगा। गोल भू जो शब्द है उसको प्रयत्न लाघव से लकार का लोप हो गया। पश्चिम के लोग भकार का उच्चारण कर नहीं पाते क्योंकि वह महाप्राण है। वे महाप्राण का नहीं अल्प प्राण का ही उच्चारण करते हैं। वे भकार न बोल कर बकार बोलते हैं। उकार का जब लोप हुआ और भकार के स्थान पर बकार आ गया तो क्या बन गया वहाँ? ग्लोब। गोल भू का ग्लो बू बना। भाषा विज्ञान की दृष्टि से भूगोल का ही

अपभ्रंश है गोल भू। अंग्रेजी में इसे ग्लोब कह दिया। ये जो हमारे यहाँ की प्रक्रियायें हैं ये मनुष्य को यथार्थ का अवबोधन कराती हैं।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि हमारे यहाँ शब्द में ही अपना अर्थ निहित होता है। हम कहते हैं ब्रह्माण्ड। ब्रह्माण्ड माने बड़ा अण्डा और उसी ब्रह्माण्ड को अंग्रेजी में गोल्डन एग्ग कहा जाता है। वेद में उसे हिरण्यगर्भ कहा गया है। हिरण्यगर्भ का ध्यान करने के लिए ब्रह्माण्ड ही मूल है। शिवलिंग ब्रह्माण्ड की ही आकृति का बनाया गया है। शिवलिंग बना करके उसके ऊपर ध्यान की विधि बताई गई है। उसके ऊपर ध्यान की विधि क्या है? सगुण निराकार का ध्यान करें। शिवलिंग में कोई आकार नहीं है लेकिन वह है सगुण। निराकार सृष्टि की तीन अवस्थाएँ हैं – निर्गुण निराकार, सगुण निराकार और सगुण साकार। पहली अवस्था है निर्गुण निराकार फिर उसके बाद में होता है सगुण निराकार। शिवलिंग सगुण निराकार है। उसमें आकार कुछ नहीं है लेकिन है सगुण गोल–मटोल ब्रह्मण्ड। तो ब्रह्माण्ड का चिन्तन करते–करते आप cosmic चित्त के साथ एक होने की प्रक्रिया को अपनायें हैं, यह ध्यान के लिए है।

इसी प्रकार से जब श्रीमन्नारायण की उपासना बड़ी तो ध्यान के लिए शिव की जगह नारायण की, राम की तथा कृष्ण की मूर्ति बनने लगी। अब तो पता नहीं किस–किस की मूर्तियाँ बनती चली जा रही हैं। यह जो गणेश जी की मूर्ति बनी यह प्रणव या ओंकार को ही Personify किया गया है। ओंकार को लिख करके किसी मुनष्य के धड़ पर रख दोगे तो पीछे वाला हिस्सा सूंड बन जायेगी उसके इधर वाला कान बन जायेगा। बिल्कुल गणेश जी तैयार हो जायेंगे। ये सारी जो प्रक्रियाएं हमारे यहाँ बनाई गई हैं ये ब्रह्म की उपासना की प्रक्रियाएं हैं लेकिन दुर्भाग्य से लोग समझे नहीं और उसका प्रवाह दूसरी तरफ बन गया।

मैं लोगों को बता रहा था कि योग मार्ग आपको कहता है कि चित्त को कहीं टिकाने के लिए अवलम्बन दे दो और सांख्य मार्ग कहता है कि अवलम्बन की जरूरत नहीं है। जो बुद्धि प्रधान लोग हैं उनके लिए अवलम्बन की जरूरत नहीं पड़ती लेकिन जो हृदय प्रधान लोग हैं उनके लिए तो अवलम्बन की जरूरत पड़ती है इसलिए बुद्धि प्रधान लोगों के लिए सांख्य मार्ग है और हृदय प्रधान लोगों के लिए योग मार्ग। योग मार्ग में अवलम्बन है सांख्य मार्ग में कोई अवलम्बन नहीं है इसीलिए सांख्य दर्शन में ईश्वर के लिए स्थान नहीं है लेकिन योग दर्शन में पतंजलि कहते हैं।

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्।

(यो0 सू0 २/४५)

ईश्वर के प्रति समर्पित हो जाओ समाधि प्राप्त हो जायेगी तुम्हें। ये जो प्रक्रियाएं हैं इन प्रक्रियाओं को समझाते हुए भगवान् ने गीता के छटे अध्याय में दोनों बातें बताई। कहा कि जो व्यक्ति संन्यासी नहीं है, सांख्य का अवलम्बन नहीं लिया, त्याग का अवलम्बन नहीं लिया वो योगी नहीं बन सकता।

न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन।

(गीता ६/२)

संकल्पों के त्याग का नाम है 'सांख्य, संन्यास।' यह भगवान् ने समझाया। अब भगवान् आगे क्या समझा रहे हैं? भगवान् ने कहा कि अब समय बहुत हो गया है, शाम को बावरा जी यहीं बता देना।

हरि ॐ तत्सत्।

उदयपुर
20.03.1998
सायं

८

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

करुणानिधान भगवान् की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यह मेरी आन्तरिक शुभ कामना। आज मेरे इस ज्ञान सत्र का चौथा दिन है। मूल उद्देश्य है मानव जीवन को भोगात्मक प्रवृत्ति से विरत करके योगात्मक जीवन जीने के लिए प्रेरणा प्रदान करना क्योंकि व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र का हित इसी में है। प्रात: काल की बैठक में एक बात समझाई थी– जब तक आप अपने कामना से युक्त संकल्पों का त्याग नहीं करते और भावना से भावित होकर लोक हितार्थ कर्मों में प्रवृत्त नहीं होते तब तक आप जीवन में सुख और शान्ति का अनुभव नहीं करते। भगवान् का यह संदेश है –

यं सन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव।।
न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन।।

(गीता ६/२)

इसकी व्याख्या सवेरे विस्तार के साथ की गई थी। जब तक आप अपनी कामना से प्रेरित संकल्पों का त्याग नहीं करते तब तक आप योगी नहीं हो सकते। जब तक आप योगी नहीं होते तब तक आप दु:खों से मुक्त नहीं हो सकते। गीता के इसी छटे अध्याय में भगवान् ने बताया – **योगो भवति दु:खहा।** (गीता ६/१७) दु:खों का नाश करने वाला केवल योग है। उस योग की सिद्धि में वासनात्मक संकल्पों का त्याग अति आवश्यक है।

एक बात और मैंने बड़ी वैज्ञानिक दृष्टि से समझाने की कोशिश की थी कि जब आपके ब्रह्मचक्र में चिदांश का आविर्भाव होता है उस अवस्था में दो प्रकार की क्रियायें प्रारम्भ होती हैं – एक श्वास की और दूसरी विचार की। इन दोनों का संयमन करना है। इन दोनों के सहारे ही उस कारण तक पहुंचना है, उस कारण में अवस्थित होना है जिसमें अवस्थित होने का नाम योग है। इन दोनों को पकड़ने के लिए अलग–अलग साधन बताए गये हैं। भगवान् से प्रश्न किया गया कि प्रभो! प्राण क्रियात्मक, कर्मात्मक है और चेतना बोधात्मक, विचारात्मक है। इन दोनों में साधक सबसे पहले किसका आश्रय ले? प्राण का आश्रय ले या चेतना का आश्रय ले? सांख्यवादियों का कथन है कि चेतना का आश्रय लेना चाहिए। हठयोगियों का कथन है कि प्राण का आश्रय लेना चाहिए लेकिन यथार्थ में साधक के लिए सरल उपाय क्या है? किसका आश्रय लेना चाहिए? अब भगवान् योगी की उच्चतम अवस्था को प्राप्त करने की साधना का उपदेश प्रारम्भ करते हैं। छटे अध्याय के तीसरे श्लोक में उनका कथन है कि –

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।।

(गीता ६/३)

भगवान् ने कहा कि देखिए यह जीव अनेक जन्मों से कर्म करने का अभ्यासी हो चुका है और कर्म उसकी नियति बन चुका है। कर्म से रहित एक क्षण भी वह रह नहीं सकता–

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

(गीता ३/५)

अब कर्म में उसकी सहज प्रवृत्ति हो चुकी है इसलिए कर्म का त्याग तो उसके लिए सम्भव नहीं। फिर क्या करे–**आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं**। जो मुनि हैं, मननशील व्यक्ति हैं, जिन्होंने निश्चय किया है कि हमें इस प्रवाह से छुटकारा मिलना चाहिए। **पुनरपि जननं पुनरपि मरणम्**– इससे हमें मुक्त होना है। बहुत दिन प्रकृति के अधीन हो करके अनेक प्राकर के नाच नाच लिए। सूरदास जी के शब्दों में–

अब मैं नाचिउँ बहुत गोपाल।

लेकिन अब आगे उनकी ऐसी नाचने की चाह नहीं है। अब इस नाच से वो विरत होना चाहते हैं। उनको क्या कहा गया है? मुमुक्षु।

मानव की दो प्रकार की प्रवृत्तियां हैं–बुभुक्षु और मुमुक्षु। बुभुक्षु की दो

प्रकार की प्रवृत्तियां हैं और मुमुक्षु की भी दो प्रकार की प्रवृत्तियां हैं। जो अपने व्यष्टिभाव को सुरक्षित रखते हुए ब्रह्मलोक–पर्यन्त सुख की चाह रखता है वो मुमुक्षु नहीं है बुभुक्षु है। यदि वह स्वर्गादि लोकों की चाह रखता है तो भी मुमुक्षु नहीं बुभुक्षु है यानी वो भोग मार्गी है योग मार्गी नहीं है। जहाँ तक व्यष्टिभाव को सुरक्षित रखने की चाह है वहाँ तक मुमुक्षा नहीं है। ऐसा व्यक्ति बुभुक्षु कहा जाता है। बुभुक्षु तप भी करता है, यज्ञ भी करता है, दान भी देता है और कर्म भी करता है अर्थात् उसके सारे क्रिया–कलापों का केवल एक ही उद्देश्य होता है कि हमें सुख मिल जाए। उसमें अपने Individuation को, अपने व्यष्टिभाव को सुरक्षित रखने की चेष्टा बनी रहती है। यह बुभुक्षु है मुमुक्षु नहीं है। मुमुक्षु वह है जो अपने उस सीमित अहं से विमुक्त होने के लिए तत्पर हो। जो उस सीमा से मुक्त होने के लिए अपने Individuation को सदा के लिए dissolve करने के लिए तत्पर हो, उसे मुमुक्षु कहते हैं। ऐसे मुमुक्षु को ही योगी कहा गया है। वह भोगी नहीं योगी है। वह भोग मार्गी नहीं योग मार्गी है और यह योग मार्ग तब आता है दिमाग में जब वह मननशील हो। पहले बुद्धि का प्रयोग करे। प्राप्त ज्ञान के प्रयोग से व्यक्ति विज्ञान का साधक बन जाता है। जिसने अपने प्राप्त ज्ञान का उपयोग नहीं किया वह कभी विज्ञान का पात्र नहीं बन सकता इसलिए भगवान् यहाँ पर उस साधक के लिए मुनि शब्द का प्रयोग करते हैं। 'आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं' आरुरूक्षो माने जो मुनि योग का इच्छुक है, जिज्ञासु है, जो उस योग की अवस्था को प्राप्त करना चाहता है, ऐसा मननशील मुनि क्योंकि मनन से ही उसे इस सत्य का आभास हुआ है कि भोगमय जीवन में कभी शान्ति और सुख नहीं मिलने वाला। सुखाभास तो मिल जाएगा लेकिन सुख नहीं मिलेगा। यह उसने मननशीलता से समझा। यदि वह मननशील न हो फिर तो जो दृश्य और अनुश्रित विषय हैं उसी में उसकी अनुरक्ति होगी। भगवान् कहते हैं –

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।

ऐसा मननशील व्यक्ति जो योग की अभिलाषा रखता है, उसके लिए कर्म ही कारण कहा गया है क्योंकि कर्म का वह अभ्यासी है और अभ्यासी होने के नाते अपनी प्राणमयी शक्ति को बड़ी सुगमता से पकड़ सकता है। याद रखो! मन को पकड़ना इतना सुगम नहीं है जितना सुगम प्राण को पकड़ना है। अभ्यासी से पूछो वह बताएगा कि आप प्रयत्न करें तो कुछ मिनट तक अपने प्राण को रोक सकते हैं। उतनी देर तक मन को रोक सकते हैं क्या? नहीं। अर्जुन जैसा जिज्ञासु कहता है कि –

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।

(गीता ६/३४)

जैसे वायु की गति को पकड़े रखना दुष्कर है ऐसे ही मन की गति को पकड़ना दुष्कर है। प्रारम्भिक अवस्था में साधक के लिए तो बहुत कठिन है। भगवान् ने कहा–भाई जो waves of thought हैं उनको एकाएक कंट्रोल करना बड़ा ही मुश्किल है। मननशील योग के अभीप्सु के लिए प्राण की क्रियाओं को पकड़ना सरल है। कर्म प्राण की क्रिया है और विचार मन की क्रिया है, चेतन की क्रिया है, यही दो गतियां हैं। आपके जीवन में प्राण और चेतना, thought and breath एक क्रिया शक्ति है और दूसरी विचार शक्ति। इन दोनों के नियमन का निर्देश है योगी के लिए। इसमें सुगम कौन सा है? भगवान् ने कहा कि प्राण की क्रिया को कंट्रोल करना, उसको Modify करना तथा उसको chanalise करना सुगम है। हां, जब प्राण आपके अधीन हो जाए, तब? कहा कि फिर तो –

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।

(गीता ६/३)

यह शम जो है यह मन की क्रिया है, चेतना की क्रिया है और कर्म प्राण की क्रिया है। भगवान् कहते हैं कि साधक को सर्वप्रथम प्राण की क्रियाएं जो हैं यानी कर्म जो है उसका अवलम्बन लेना चाहिए। किस प्रकार के कर्म का अवलम्बन लेना चाहिए? कहा कि जो कर्म योग में उपयोगी हो। इसके लिए भगवान् ने इसी अध्याय के आगे एक श्लोक में बताया है –

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

(गीता ६/१७)

कहा कि यह दुःखों का नाश करने वाला योग है। यह कब सिद्ध होगा? कैसे होगा? भगवान् ने इसके लिए शर्त रखी–युक्त आहार, युक्त विहार, युक्त चेष्टा, युक्त स्वप्न, युक्त अवबोधन– कितने हो गए? ये पांच उसके अंग बताये और आपके जीवन की सारी क्रियायें उन पांचों में सिमट आती हैं। जो कुछ आप ग्रहण करते हैं उसको आहार कहते हैं। आपके जीवन का मूल स्रोत बना हुआ है आपका आहार। आह्रयते इति आहारः–आहार वही नहीं है जो आप खाते हैं। जो कुछ आप बाहर से ग्रहण करते हैं वह आहार कहा जाता है। नेत्र का भी आहार है और श्रोत्र का भी आहार है। इस समय जो आप मेरी बात सुन रहे हैं यह

किसका आहार है? बुद्धि का आहार है। यह कान के द्वारा अन्दर जाता है। तुलसीदास जी ने इसके लिए लिखा है –

सकिलि श्रवण मग चलेउ सुहावंन।

(रा० १/३६–८१)

उन्होंने अपने रामचरित मानस के प्रारम्भ में यह बात कही है कि –

बेद पुरान उदधि घन साधू।।

(रा० १/३६–३)

वेद, पुराण और शास्त्र समुद्र हैं। समुद्र का जल उपयोगी नहीं होता, पीने के काबिल नहीं होता, खारा होता है लेकिन वही जल जब भाप बन करके बादल रूप में परिणत हो जाता है और वह जल जब बादल ले जाकर बरसाते हैं तो वही उपयोगी हो जाता है।

बेद पुरान उदधि घन साधू।

वेद पुराण समुद्र हैं और साधु जो हैं वे बादल हैं। क्या करते हैं –

बरषहि राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मंगलकारी।।

(रा० १/३६–४)

साधु रूपी बादल परमात्मा के दिव्य गुणों की वर्षा करते हैं। समुद्र का जल मधुर नहीं खारा होता है लेकिन वही जब बादल के द्वारा वृष्टि की जाती है तो मधुर हो जाता है। मधुर होने के नाते वह मनोहर हो जाता है ओर वह रोग का निवारण करने वाला परम औषधि बन जाता है। समुद्र का जल पीयें तो रोग हो जायेगा और बादल से बरसने वाला जल इक्टठा करके पियो तो रोग का नाश कर देता है। जल वही है लेकिन वो 'वेद पुराण उदधि घन साधु' के द्वारा बरसाया गया है और वो जल किस प्रकार से अन्दर गया है? कहा –

सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन।।

(रा० १/३६–८)

वो जल इक्टठा हो करके कान के रास्ते से चला और पहुंचा कहाँ –

मेधा महि गत सो जल पावन।

(रा० १/३६–७ १/२)

मेधा रूपी महि में। मेधा माने आपकी बुद्धि, ग्रहण शक्ति। तो ग्राहिका शक्ति रूपी बुद्धि में वो जाकर इक्टठा हो गया –

भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद सीत रुचि चारु चिराना।।

(रा० १/३६–९)

वह जल जब अन्दर गया तो सुमानस अर्थात् सुन्दर मन में सुस्थिर एवं शान्त हो करके निर्मल हो गया।

मेरा कहने का अभिप्राय कि जब आप अपने कानों से किसी तत्त्व विज्ञान की बातों को श्रवण करते हैं तो वह बुद्धि का आहार होता है। नेत्रों से जब उत्तम पदार्थ देखते हैं तो वो भी आपके नेत्रों का आहार हो जाता है। जो खाते हैं वह जिह्वा और आपके उदर का आहार है। जहाँ–2 से आप आहार ग्रहण करते हैं इन्हें वेदान्त की भाषा में पांच ज्ञानेन्द्रियां और चार अन्तःकरण कहा गया है और सांख्य की भाषा में आठ स्रोत कहा गया है। अब जो आप ग्रहण कर रहे हैं वह आपकी साधना में उपयोगी है या अनुपयोगी है, यह कौन समझेगा? कहा कि मुनि।

आहार और विहार दोनों ही कर्म हैं। जो आप ग्रहण करते हैं उसी के अनुसार तो आप त्याग करते हैं। जो आप बाहर से ग्रहण करेंगे वही तो देंगे। जो आपके पास है वही तो बाँटेंगे। आपका यदि आहार शुद्ध हो जाए तो आपका विहार भी शुद्ध हो जाएगा इसलिए युक्त आहार और युक्त विहार होना चाहिए। हमारे यहाँ मोटे तौर पर स्थूल रूप में आहार–विहार को भारतीय जीवन विधान का मूल माना गया है। मैं विदेशियों को भी कहा करता हूँ कि Sanctity of food and sex, both are base of Indian way of life, Indian culture and Indian dharma. दुनिया में और कोई ऐसा देश नहीं, समाज नहीं जहाँ इन दोनों की पवित्रता को महत्त्व दिया गया है। जब से अनेक प्रकार के भयंकर रोगों का आविर्भाव हुआ तब से पश्चिम के लोग सोचने लगे हैं कि आहार और विहार की पवित्रता आवश्यक है। इससे पहले उनकी समझ में यह बात नहीं आई थी। वहीं का ज्ञान आयात हो करके अब भारत में आया। लार्ड मैकाले से ले करके अब तक उसी ज्ञान के प्रवाह में यहाँ के भी लोग यही समझने लगे हैं कि Sex is our biological demand and food is only for fulfilling our stomach. इसका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। विशेष महत्त्व स्वीकार न करने का परिणाम जो कुछ हो रहा है, आप लोग देख रहे हो। सारा ढाँचा ही बिगड़ता चला जा रहा है। त्राहि–त्राहि मचा हुआ है। इस त्राहि–त्राहि के पीछे क्या है? अनेक प्रकार के रोग, संताप, संघर्ष तथा अपराधों की वृद्धि होती जा रही है, इसका मूल आधार क्या है? आहार और विहार की अपवित्रता।

भगवान् ने कहा आपका आहार और विहार युक्त होना चाहिए। विहार का एक अर्थ सैक्स भी होता है, याद रखना। युक्त आहार लें और युक्त विहार हो। आप जो कुछ ग्रहण कर रहे हैं वह आपके लिए युक्त है कि नहीं है? उसका

परिणाम आपके लिए क्या होने वाला है। हमारे यहाँ आहार के छः परिणाम भगवान् ने गीता के 17वें अध्याय में बताए हैं –

आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।

(गीता १७/८)

पहले पश्चिम के लोग भी समझते थे कि आहार केवल भूख को शान्त करने वाला ही है। अब वो कहते हैं कि आहार ऐसा होना चाहिए जो स्वास्थ्यप्रद हो, स्वादप्रद न हो। यह तो आप लोग देख रहे हो, जरा सा शरीर विकृत हुआ और पैंक्रियाज़ काम करना बन्द कर दिया तो शूगर हजम नहीं होती। अब डाक्टरों ने बताया है कि तुम आज से मीठा बन्द कर दो, नहीं तो शूगर की बीमारी हो जायेगी। मीठा चला गया स्वाद समाप्त हो गया। अब ब्लड प्रैशर हाई हो गया, नमक खाना बंद कर दो। नमक भी चला गया। अरे भाई! मिर्च मसाले खाना बन्द कर दो, वो भी चले गए। अब स्वाद के लिए भोजन नहीं रहा। किसके लिए रहा? स्वास्थ्य के लिए। भोजन स्वास्थ्य के लिए है, अब यह पश्चिम के लोग भी समझने लगे हैं। भारतीय वैज्ञानिक तो कहता है केवल स्वास्थ्य नहीं बल्कि–

आयुःसत्त्वबलारोग्य सुखप्रीतिविवर्धनाः।

(गीता १७/८)

जो आहार तुम ग्रहण करो वह छः चीज़ों की वृद्धि करने वाला हो। आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रेम की वृद्धि करने वाला होना चाहिए। आप क्या समझते हो कि मुर्गे का गला मरोड़ करके छौंक करके खाने से प्रेम की वृद्धि होगी क्या? हिंसा के ऊपर आधारित जो आपका आहार है वह आपमें प्रीति की वृद्धि करेगा, सुख की वृद्धि करेगा तथा आरोग्य की वृद्धि करेगा? गाय जो दूध देती है उसका आधार क्या होता है? वात्सल्य। वात्सल्य से द्रवित होकर के उसके शरीर में दूध का निर्माण होता है। दूध प्रेम से उत्पन्न होता है और अण्डा? आप सोचिए यदि आप दूध और दूध से निकला हुआ मक्खन खाते हैं तो आप में प्रेम की वृद्धि होगी, अण्डा या मुर्गे का गला दबा कर चट कर जायेंगे तो प्रेम की वृद्धि होगी? कहां से आयेगा प्रेम? आहार दूषित है तो वहां पर आयु की वृद्धि नहीं हो रही; आयु क्षीण हो रही है।

आप किसी वैज्ञानिक से पूछ लीजिए कि जब आप शाकाहार करते हैं तो उसको हजम होने के लिए आपके प्राण को बहुत थोड़ा परिश्रम करना पड़ता है। अच्छा आहार तो 2 1/2 घण्टे में हज़म हो जाता है लेकिन जब आप अपने पेट में गली–सड़ी मांस डालते हैं तो उस मांस को हजम करने में चार घण्टे लगते

हैं। कहाँ $2^{1/2}$ घण्टे और कहां चार घण्टे। उसको हजम करने में आपकी श्वास को तीव्र मेहनत करनी पड़ती है और आपकी आयु क्षीण होती है। शाकाहार से आपकी आयु में वृद्धि होती है। यह तो वैज्ञानिकों से पूछिए, बतायेंगे आपको। इंग्लैंड का एक दार्शनिक हुआ है विक्टोरिया के जमाने में, उसका नाम था जार्ज बरनार्ड शाह। उससे कुछ लोगों ने पूछा साहिब जी! आप मांस क्यों नहीं खाते? वह शुद्ध शाकाहारी था। उसने कहा कि मेरा पेट पेट है कोई कब्रिस्तान नहीं जहां मुर्दे गाड़े जाएं। भारत में पहले 20 प्रतिशत लोग मांस खाते थे अब संख्या 60 प्रतिशत से भी ऊपर पहुंच गई है। क्या कहा जाए? डाक्टर के यहाँ जाओ तो कहेगा बच्चों को कमजोरी है, इन्हें अण्डे खिलाएं। यह नहीं कहेगा कि दूध पिलाओ, मक्खन खिलाओ क्योंकि इंग्लैड में जिस समय विज्ञान का आविर्भाव हुआ था उस समय मक्खन का महत्त्व ही नहीं था, उस समय वहां पर अण्डे का ही महत्त्व था। वही उसने पढ़ा है इसलिए वही बताता है। मेरे कहने का अभिप्राय कि यह जो आहार का दूषण है यह आपकी बुद्धि को दूषित करता है। वेद की घोषणा है –

अहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः
स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्मै मृदितकषायाय।

(छान्दोग्य0 ७/२६–२)

आहार की शुद्धि ही बुद्धि की शुद्धि में हेतु है। आप जो कुछ बाहर से ग्रहण करते हैं क्या वो आपकी साधना में उपयोगी है? यदि है तो उसका ग्रहण कीजिए, यदि नहीं है तो उसका त्याग कीजिए। इसलिए बताया गया कि मननशील लोग योग का आश्रय लेते हैं। वो अपने कर्मों का नियमन करते हैं। कर्मों में सबसे प्रथम कर्म है आहार और दूसरा कर्म है विहार और तीसरा कर्म है जो आप जीविका के लिए करते हैं। सेवेरे से शाम तक आप जिस कर्म में लगे रहते हैं उसको कहते हैं चेष्टा। तो–

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।

(गीता ६/१७)

कर्मों में युक्त चेष्टा कहने का अभिप्राय कि उन कर्मों के लिए चेष्टा करते हैं जो कर्म उनके उत्थान में हेतु होते हैं। कर्म की व्याख्या भगवान् ने गीता के आठवें अध्याय में की। अर्जुन ने पूछा भगवान् से कि कर्म क्या है?

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।

(गीता ४/१६)

कर्म किसे कहते हैं? भगवान् ने कर्म की व्याख्या जो की है मैं समझता हूँ दुनिया में आज तक कोई ऐसा दार्शनिक नहीं हुआ जो कर्म की इतनी उत्तम व्याख्या की हो। भगवान् क्या कहते हैं –

भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः।

(गीता ८/३)

अर्जुन! भूत माने प्राणी, जीव, मनुष्य और भाव माने अस्तित्व अर्थात् मनुष्यों के अस्तित्व को ऊपर उठाने वाला विसर्ग ही कर्म है यानी जिस विसर्ग से, जिस त्याग से प्राणियों के अस्तित्व को ऊपर उठाया जाता हो या प्राणियों की 'उत नति' होती हो, उस त्याग का नाम कर्म है। कर्म में आप त्याग करते हैं। किसका त्याग करते हैं? ऊर्जा का। कोई कर्म ऐसा आपका है जिसमें आपकी एनर्जी न लगती हो? कोई कर्म ऐसा है जिसको करने से आप थकते न हों? प्रत्येक कर्म के पीछे थकान होती है, क्यों? क्योंकि आपकी एनर्जी समाप्त हो जाती है। जब आपकी एनर्जी समाप्त हो जाती है तब आप थक जाते हैं, फिर स्वयं को शक्ति से भरने के लिए आप आराम करते हैं। यह जो प्रक्रिया है कि कर्म में एनर्जी का विसर्जन होता है, त्याग होता है, यह सत्य है। भगवान् कहते हैं कि वही विसर्जन कर्म की सही परिभाषा देता है जिस विसर्जन से प्राणियों के अस्तित्व को ऊपर उठाने में सहायता मिलती है।

बताओ इतनी अच्छी कर्म की व्याख्या कहीं मिलेगी आपको? कर्म वही है जिससे आपका अस्तित्व ऊपर उठे। वह कर्म नहीं है जिससे आपका अस्तित्व अधोगति को प्राप्त हो जाए। उसके लिए भगवान् ने एक शब्द प्रयोग किया है– विकर्म। वो क्रिया जो आपकी चेतना को जो कि शरीर में आसक्त हो गई है, अन्नमय कोष में आबद्ध हो गई है, उसको अन्नमय कोष से ऊपर उठा करके विज्ञानमय कोष में और विज्ञानमय कोष से ऊपर उठा कर आनन्दमय कोष में प्रतिष्ठित करती है, वो कर्म कहलाती है। जिससे आपकी चेतना की अधोगति होती है, उसे कर्म नहीं कहते इसलिए यहां बताया गया कि युक्ताहार, युक्ताविहार और कर्मों में युक्त चेष्टा ही चेतना को अधोपतन से बचाते हैं इसीलिए यौगिक कर्मों की प्रतिष्ठा है।

यौगिक कर्म कौन से हैं? सुबह उठिये, आसन कीजिए, प्राणायाम कीजिए तथा आसन और प्राणायाम के साथ शुद्धि के कुछ कर्म हैं उनको कीजिए, उसके साथ आत्म संयम के लिए आप किसी आसन विशेष पर बैठकर के ध्यान कीजिए। प्रत्याहार और एकाग्रता के लिए आप धारणा कीजिए। धारणा और ध्यान

का अभ्यास वो कर्म हैं जो आपको उत्नति यानी ऊपर ले जाते हैं। ये नीचे गिराने वाले कर्म नहीं हैं। कहा कि दिन भर यही करते रहें? दिन भर तो कोई कर नहीं सकता। प्रातःकाल उठिए, शुद्ध होइये, शौच आदि से निवृत्त हो करके स्नान कीजिए और अपने इन कर्मों में लग जाइये। महाभारत में इस बात को भगवान् ने दुहराया है कि केवल दो घण्टे सवेरे और दो घण्टे शाम को जो योगी अभ्यास में समर्पित करता है, वह थोड़े ही काल में पूर्णत्व को प्राप्त कर लेता है। यह योग की साधना संन्यासियों के लिए ही नहीं है। इसको चाहे गृहस्थ हो चाहे विरक्त हो, मनुष्य है तो वह कर सकता है। यह मानव मात्र के लिए है। यह आप भूल जाएं कि यदि आप योग की साधना में लगेंगे तो आपका गृहस्थ बर्बाद हो जायेगा, ऐसी बात नहीं है। यह गृहस्थ को बर्बाद नहीं आबाद करने वाली साधना है। आपका जीवन संयमी और सुव्यवस्थित हो जायेगा। आपकी वासनाएं धीरे-धीरे क्षीण हो जायेंगी और आपकी भावनाओं का विस्तार होगा। जब वासनाएं क्षीण होती हैं और भावनाएं विकसित होती हैं तो जीवन आनन्दमय हो जाता है क्योंकि गीता में भगवान् ने कहा है कि जहां भावना है वहीं सुख है, वहीं शान्ति है–

न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्।

(गीता २/६६)

जहाँ भावना नहीं है वहां शान्ति नहीं है। जहाँ शान्ति नहीं वहाँ सुख कैसे हो सकता है? भगवान् कहते हैं कि पहले तुम अपने आहार-विहार, कर्मों में चेष्टा, स्वप्न तथा अवबोधावस्था को देखो। कितने बजे सोते हो, कितने बजे उठते हो, कैसे सोते हो और कैसे उठते हो, इसकी बड़ी महिमा है। ध्यान करते हुए सोते हो या कम्पोज़ खाकर सोते हो? जिस समय चेतना शक्ति निद्रानुमुख होती है उस समय वो एक हिता नाम की नाड़ी से अन्तर्मुखी होकर के हृदय प्रदेश में प्रवेश करती हैं। प्राण की क्रिया चलती रहती है। उस समय यदि आप थोड़ा सा सावधान होकर के सुमिरन में लग जाएं, सुमिरन और ध्यान करते-करते आपकी चेतना यदि हिता नाम की नाड़ी को पार कर जाए तो वो निद्रा समाधि में गिनी जाएगी। उसको कहते हैं युक्तस्वप्नावस्था। युक्तस्वप्ना माने परमात्मा से युक्त हो करके सोना। जब आप जागेंगे तो क्या होगा? आँख खुलते ही बिना चाहे जिस मंत्र का जाप करते हुए आप निद्रा में गए थे उसी मन्त्र का आपके अन्तर में स्वतः सुमिरन शुरू हो जायेगा।

आप रामायण पढ़ते हैं? रामायण में एक प्रसंग आता है कि हनुमान जी जब लंका में पहुंचे तो उन्होंने सारी लंका में देख लिया, सीता जी कहीं नहीं मिली।

आगे बढ़े तो उन्हें एक भवन दिखाई दिया। उस भवन पर राम नाम लिखा हुआ था, सामने तुलसी का पौधा लगा हुआ था, दीवारों पर धनुषबाण का चिन्ह था तो हनुमान जी चौंक पड़े कि यह क्या? यह लंका तो निसाचरों की नगरी है, यहाँ सज्जन का निवास कैसे? सज्जनों के दरवाज़े पर कुछ सात्त्विक चिन्ह होते हैं। उनके घर में जाओ तो सर्वत्र सात्त्विक पदार्थ देखने को मिलते हैं, घर में पढ़ने के लिए सात्त्विक साहित्य होता है, दिवारों पर महापुरुषों, योगियों तथा भगवान् के चित्र लगे हुए होते हैं। जिस प्रकार के संस्कार होते हैं उसी के अनुसार लोग घरों में सजावट करते हैं।

हनुमान जी को बड़ा आश्चर्य हुआ। प्रात: काल का समय था। सुबह के चार बजे थे, विचार करने लगे–

लंका निसिचर निकर निवासा।
इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा।।
मन महुँ तरक करैं कपि लागा।
तेहीं समय बिभीषनु जागा।।

(रा0 ५/६–१,२)

लंका में तो निसाचरों का वास है। यहाँ सज्जन का घर? हनुमान जी विचार ही कर रहे थे कि विभीषण की आँख खुल गई। आँख खुलते ही विभीषण जी क्या करते हैं? आवाज़ नहीं लगाई कि बैड टी ले आओ। क्या निकला मुख से?

राम राम तेहिं सुमिरन कीन्हा।
हृदयँ हरष कपि सज्जन चीन्हा।।

(रा0 ५/६–३)

विभीषण जी उठते ही राम नाम का सुमिरन करने लगे। हनुमान जी समझ गए कि कोई संत हैं क्योंकि जो राम–राम कहते हुए निद्रा में जाता है, निद्रा से लौटते उसी के मुख से राम नाम निकलेगा। यदि संसार का चिंतन करते हुए नींद में चले जाओगे तो सपने में भी रोते रहोगे और जागते हुए भी संसार का प्रवाह तुम्हारे सामने खड़ा होगा इसलिए–

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।

(गीता ६/१७)

निद्रा में कैसे जाना है और निद्रा से किस प्रकार लौटना है, क्या करना है? भगवान् कहते हैं कि सोने से पहले ध्यान करते हुए अपने आपको उससे जोड़ें और जोड़ करके निद्रा में चले जाओ और जागने के पश्चात् तुरन्त बैठ करके

अपने आपको उससे जोड़ दो। आपको समय नहीं मिलता क्योंकि बहुत व्यस्त रहते हो। सोने से पूर्व और जागने के तुरन्त पश्चात् तो आप आधा घंटा बैठ सकते हो? कौन दुनिया उल्टने वाली है यदि आप नहीं उठे तो? सोचो पहले, क्या बिगडने वाला है? यह जो समय है जिस समय आपकी चेतना अन्तर्मुखी हो रही है, जब जागृत अवस्था में आपकी चेतना बाह्यमुखी हो रही है, ये दोनों ऐसे सन्धिकाल हैं कि यदि आप इसे अपने लक्ष्य के साथ जोड़ दो तो तुम्हारा दुःखों का नाश करने वाला योग सिद्ध हो जाएगा। इन्हीं क्रियाओं को जिन्हें कर्म कहते हैं योगी अवलम्बन लेता है।

पहले वह अपने कर्म को व्यवस्थित करता है, कर्म को संयमित करता है फिर वह अपनी चेतना को संयमित करने की दिशा में प्रवृत्त होता है इसलिए भगवान् ने गीता में कहा है –

कार्यकरणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्येत।।

(गीता १३/२०)

यह बात समझे? आपके इस जीवन में दो तत्त्व हैं एक पुरुष तत्त्व है और दूसरा प्रकृति तत्त्व है। कार्य, करण और कर्तृत्त्व में हेतु प्रकृति होती है। कार्य माने शरीर, करण माने इन्द्रियां और इनके व्यापार को कर्तृत्त्व कहते हैं। उसमें वो प्रकृति कारण है। इन कर्मों के परिणामस्वरूप जो अनुकूल अनुभूति सुख और प्रतिकूल अनुभूति दुःख का अनुभव करने वाला है, वह चेतन है। यह जड़ उसका अनुभव करने वाला नहीं। यह पुरुष उसका अनुभव करता है। अब यहाँ पर आप समझ गए होंगे कि यद्यपि आप स्वयं में चेतन हैं लेकिन प्रकृति आपके साथ जुड़ी हुई है। आप प्रकृतिस्थ हैं, प्रकृति में आसक्त हैं इसलिए पहले प्रकृति का प्रयोग करके उसको अपने अधीन कीजिए। प्रकृति का प्रयोग करने के लिए ही आप कर्म का अवलम्बन लीजिए। कर्म से ही आप अकर्म की स्थिति में प्रवेश करेंगे।

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।

(गीता ४/१८)

भगवान् चौथे अध्याय में कहते हैं कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म की अनुभूति बहुत ही उन्नत अवस्था है। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए पहले आपको अपने कर्मों को chanelise करना होगा। कर्म करने की प्रवृत्ति तो बनी ही हुई है। अभी संसारोन्मुख होकर कर्म कर रहे हैं। अभी प्रकृति की प्राप्ति के लिए कर्म कर रहे हैं। अभी प्रकृति के पदार्थों को ग्रहण करने के लिए कर्म कर रहे हैं,

अब प्रकृति के पदार्थों से विरत होकर के पुरुष के प्रकाश के लिए कर्म में प्रवृत्त होइये। पुरुष के प्रकाश के लिए जब कर्म में आप प्रवृत्त होंगे तो युक्त कर्म कहे जायेंगे। युक्त कर्म के प्रसाद से ही आप–

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।

(गीता ६/३)

उस परमशान्तिमय अवस्था को प्राप्त करेंगे लेकिन उससे पहले जो शर्त है कि आप उन कर्मों का भी अवलम्बन लें जो योग में उपयोगी हैं जैसे आसन, प्राणायाम आदि। आप मन्त्र योग, लययोग, राजयोग, हठयोग या किसी भी प्रकार की साधना करते हैं, प्राणायाम आपके लिए अमृत है। इससे श्रेष्ठ और कोई साधना नहीं। प्राणायाम की भगवान् ने गीता के चौथे अध्याय में बड़ी सहज विधि बताई है।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।

(गीता ४/२९)

कितनी सरल विधि है। इसको यौगिक भाषा में कौन सा प्राणायाम कहते हैं? भस्त्रिका प्राणायाम। आप प्राण वायु को इतना लम्बा खींचिए कि आपके अपान तक पहुंच जाए। अपान कहां है? नाभि के नीचे। नाभि से लेकर पांव तक अपान वायु है। उसको बाहर फेंकिए तो नीचे से अपान वायु को यानी नाभि के नीचे की अपान वायु खींच करके आप उसे बाहर फेंक कर प्राण वायु में हवन कीजिए। जब आप इस प्रकार की प्रक्रिया को बार–बार करेंगे तो उसे कहते हैं भस्त्रिका प्राणायाम। भस्त्रिका प्राणायाम का परिणाम क्या होगा? भगवान् कहते हैं –

प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः।

(गीता ४/२९)

ये प्राण और अपान दोनों सम हो जायेंगे फिर आप प्राणायाम के परायण हो जायेंगे इसलिए आपके लिए प्राणायाम बहुत ही उपयोगी साधन है। गीता में इसकी बड़ी महिमा गाई गई है। प्राणयाम के साथ आप ध्यान की प्रक्रिया अपनावें। ये सब क्रियायें हैं। एक दिन मैंने बताया था कि वेद का एक मन्त्र मुझे बहुत प्रिय है। जिसमें ऋषि कहता है –

जानाम्यहँ शेवधिरित्यनित्यं–

न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्।

मैं जानता हूँ कि इस अध्रुव माने नाशवान् अर्थात् अनित्य पदार्थ के सेवन से ध्रुव तत्त्व की प्राप्ति नहीं होती, सभी यही कहते हैं–

ततोमया नाचिकेतश्चितोऽग्निः–

अनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम्।

(कठ0 १/२–१०)

परन्तु मैंने नाचिकेत अग्नि का अभ्यास किया है। उस अग्नि के प्रकाश में इन्हीं अनित्य द्रव्यों से मैंने नित्य को प्राप्त कर लिया है, वो आप भी प्राप्त कर सकते हैं। आपके पास जो साधन हैं वो तो अनित्य ही हैं परन्तु आपका साध्य तो अनित्य नहीं है। अनित्य साधन का ही प्रयोग करके आपको नित्य को प्राप्त करना है लेकिन इस अनित्य से आप कब नित्य को प्राप्त करने में सक्षम होंगे? जब उसी ऋषि के समान आपको भी नाचिकेत अग्नि विद्या प्राप्त होगी। अग्नि विद्या माने योग विद्या। वहाँ अग्नि विद्या योग विद्या के लिए कहा गया है।

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।

बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्।।

(कठ0 २/३–१०)

यह ऋषि उस परम गति को प्राप्त करने की सीख देता है।

मैं आप लोगों से निवेदन कर रहा था कि कर्म में प्रवृत्त होने, योग की साधना में प्रवृत्त होने के लिए सर्वप्रथम आप अपनी प्राण शक्ति का प्रयोग करें। प्राण शक्ति कर्म का आधार है इसलिए कर्म का अवलम्बन लें–

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।

योगरूढ़स्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।

(गीता ६/३)

जब आप पूर्ण रूप से योगारूढ़ हो जायेंगे तो शम कारण होता है। कहा इसका क्या अभिप्राय है? भगवान् ने कहा भईया! कल बता देना। आज समय पूरा हो गया।

हरि ॐ तत्सत्

उदयपुर
21.03.1998
प्रातः

१

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्मओ!

करुणानिधान भगवान् की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यही मेरी आन्तरिक शुभ कामना। कल मैंने आप लोगों को एक बात समझाई थी– योगमयी जीवन जीने के लिए प्राणमयी और चेतनामयी दोनों शक्तियों का समन्वय अति आवश्यक है। भगवान् कहते हैं कि चेतनामयी शक्ति को एकाएक शान्त कर देना, स्थिर कर देना, उसे एक लक्ष्य में प्रतिष्ठित कर देना सुगम नहीं है। उसका उपाय बताते हुए कहते हैं कि जो प्राणमयी शक्ति है पहले उसके समुचित प्रयोग की प्रक्रिया को समझ कर उसके नियमन का प्रयत्न करना चाहिए। इसी भाव को व्यक्त करते हुए भगवान् कहते हैं–

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।

साधना यहाँ से शुरू होती है। पहले अपने कर्मों को डाइवरट करें तो विचार अपने आप डाइवरट हो जायेंगे। एकाएक ऐसा करना कठिन है। यहाँ एक प्रश्न होता है कि बिना विचार परिवर्तित हुए कर्म कैसे परिवर्तित हो जायेंगे? कहा कि इसी का नाम है यत्न (प्रयत्न) जिसके लिए पतंजलि कहते हैं –

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः।

(यो० सू० १/३)

उस परम तत्त्व में स्थित होने का जो यत्न है, बार–बार

प्राण शक्ति, क्रिया शक्ति, इन सबको उससे जोड़ने का जो यत्न है, उसी का नाम अभ्यास है। भगवान् कहते हैं कि सबसे पहले योगी को चाहिए कि वह क्रिया शक्ति जो उसके पास है उसका नियमन करे। उसके नियमन के लिए जो–जो आवश्यक है जैसे आहार, विहार, कर्म, स्वप्न और जाग्रण, इन पांच प्रकार की क्रियाओं को परिवर्तित करे। आगे भगवान् कहते हैं कि जब वह प्राण शक्ति का अपने संकल्पानुसार प्रयोग करना प्रारम्भ कर देगा तो धीरे–धीरे उसकी चेतना शक्ति स्थिर होने लगेगी। हठ योगियों का सिद्धान्त है कि पहले प्राण का नियमन करो तो मन का नियमन हो जायेगा। प्राण के नियमन के लिए ही यौगिक क्रियाओं की व्यवस्था है।

वर्तमान में जो पश्चिम में योग प्रचलित है और भारत में भी आजकल योग के नाम से जिसका प्रचार व प्रसार हो रहा है, इसके लिए भारत सरकार ने भी एक स्वतन्त्र विभाग स्थापित कर रखा है। अभी पिछले दिनों 23 फरवरी को दिल्ली में भारत सरकार द्वारा स्थापित इस योग विभाग का एक विशाल कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ है। अभी तक वो चल रहा है और 22 अप्रैल तक चलेगा। उसके उद्घाटन में मैं गया था। भारत सरकार भी काफी इसके लिए धनराशि प्रदान कर रही है। जितने सैन्ट्रल स्कूल हैं उन सभी स्कूलों में योग का एक विषय अनिवार्य रूप से रख दिया है। उन सभी स्कूलों में जो योगाचार्य हैं उन सब का दिल्ली में इस समय एक प्रकार से कोर्स प्रारम्भ है। वहां भारत के प्रतिष्ठित योगी विद्वानों के द्वारा उन्हें प्रशिक्षित किया जा रहा है। मेरे कहने का अभिप्राय कि इस समय योग के नाम से जो कुछ भी प्रचलित है वे सभी की सभी कर्म से सम्बन्धित प्रक्रियाएं हैं। मेरा विश्वास है कि योग की उच्चतम अवस्था में प्रवेश करने के लिए उन क्रियाओं की अपनी महत्ता है। मैं स्वयं भी उन सब क्रियाओं का अभ्यास करता रहा हूँ और अभी भी करता हूँ। उसमें मुख्यतया कुछ क्रियायें ऐसी हैं जो सभी के लिए करणीय हैं और कर सकते हैं। कुछ आसन हैं जिनको करने पर आपके शरीर में लचक आ जाएगी। इससे आपका शरीर कोमल हो जाएगा। आप में ऐसी क्षमता आ जायेगी कि आप घंटे, दो घंटे, चार घंटे एक आसन पर बैठ सकेंगे। कुछ ऐसी मुद्राएं हैं यदि आप उनको करें तो आपके शरीर की ग्रंथियां ठीक प्रकार से काम करने लगेंगी। आपके शरीर में बहुत से गलैंड हैं जिनमें से आठ महत्त्वपूर्ण हैं। ग्लैंड एक स्पैशल प्रकार का रस पैदा करते हैं। यदि उन रसायनिक पदार्थों का कम या अधिक अर्थात् अनियमित उत्पादन हो जाए तो आपके शरीर के लिए हानिकारक है। उन ग्रंथियों से शरीर के लिए जितनी मात्रा

में आवश्यक है उतना ही रस का स्राव हो इसके लिए मुद्राएं हैं। जो ग्रंथियां काम नहीं करती मुद्राओं के द्वारा उनको सही किया जाता है, जो अधिक कर रही हैं उनको नियन्त्रित किया जाता है। इस प्रकार से मुद्राएं उसमें काम करती हैं। जैसे आपके शरीर में पेंक्रियाज़ काम न करे तो एक भयंकर रोग उत्पन्न होता है जिसको शूगर कहते हैं। पेंक्रियाज आपके शरीर में जाने वाले शूगर तत्त्व को हज़म करने के लिए रस का उत्पादन करती हैं। यदि पेंक्रियाज काम न करे तो धीरे-धीरे आपके शरीर में शूगर बड़ जाएगी और वह रक्त में या मूत्र में भी जा सकती है। आपके शरीर में शूगर एक भयंकर रोग बन जाएगा। इसके लिए ऐलोपैथी में कोई उपचार नहीं है। यदि आप पहले से ही सावधान हो करके पेंक्रियाज़ को सक्रिय रखें तो उचित मात्रा में रस का उत्पादन होगा। पेंक्रियाज को सक्रिय रखने के लिए कुछ मुद्राएं हैं कुछ क्रियायें हैं। थायरड ग्लैंड भी एक खास प्रकार का जूस पैदा करता है जो कि Digestion में काम आता है। यदि वह अधिक जूस पैदा करेगा तब भी आप रोगी हो जाएंगे, यदि कम जूस पैदा करता है तब भी आप रोगी हो जायेंगे। मेरे कहने का अभिप्राय कि आपके शरीर में जो आठ ग्लैंड हैं वे महत्त्वपूर्ण हैं। इनको व्यवस्थित, नियमित तथा संचालित करने की जो प्रक्रिया है वह मुद्राओं के रूप में की जाती हैं। योग में इसका उपचार मुद्रा है।

एक बात मैं आप लोगों को बता दूं। महर्षि पतंजलि ने हठ योग के विषय में, आसन के विषय में, मुद्रा के विषय में बहुत कुछ नहीं लिखा। आसनों के लिए उनके दो सूत्र हैं केवल -

स्थिरसुखमासनम्।

(यो0सू0 २/४६)

जिसमें आप स्थिर होकर के सुख से बैठ सकें वह आसन है। अब उसके लिए उन्होंने आगे सूत्र लिखा-

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्।

(यो0 सू0 २/४७)

आप जब ध्यान में बैठें तो आपके शरीर में किसी भी प्रकार का प्रयत्न न हो, हलचल न हो। यहाँ तक कि यदि आपने स्लाईवा भी निगल लिया तो आपका एक प्रयत्न हुआ न? आपका आसन समाप्त हो गया। आप चाहे एक मुद्रा में दस घंटे बैठे रहें। यदि आपके शरीर की एक अंगुली भी हिल गई तो आपका आसन समाप्त हो जाएगा यानी आपका शरीर पत्थर की तरह हो जाना चाहिए। किसी भी प्रकार की हलचल आपके शरीर में न हो, उसको कहते हैं-'स्थिर

सुखमासनम्।' किसी भी प्रकार का मानसिक, शारीरिक तथा बौद्धिक कोई प्रयत्न न हो। इसके साथ–साथ एक और शर्त है।

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्।

अपने चित्त को आप अनन्त में स्थापित कर दें। अनन्त माने आकाश में अपने चित्त को स्थापित कर दें क्योंकि आकाश आकृति रहित है और अनन्त भी है। जब आपका चित्त आकाश के साथ सम्बन्धित हो जायेगा तो आपके अन्तर में किसी भी प्रकार के प्रयत्न की प्रक्रिया नहीं होगी। यह बात तो पतंजलि ने कह दी लेकिन एकाएक यह करना तो मुश्किल होता है न? पतंजलि के बाद के जो योगी हुए हैं और बड़े–2 योगी हुए हैं उन्होंने अपने ग्रन्थों में विशेष रूप से अनुसंधान करके अभ्यास करके इन सारी बातों को स्पष्ट किया है कि ये क्रियायें कैसे की जाएं? उसके लिए घेरंड संहिता, गोरक्ष पद्धति है। हठ योग प्रदीपिका आदि ग्रन्थ आपको उन आसनों, प्राणायामों, मुद्राओं आदि की शिक्षा देते हैं। और भी बहुत से ग्रन्थ हैं। उपनिषदों में बहुत सी उपनिषदें हैं। जो विचारक हैं वो ऐतिहासिक दृष्टि से कहते हैं कि ये बाद की उपनिषदें हैं ये पहले की उपनिषदें हैं लेकिन हम लोग तो ऐसा नहीं मानते। हमारे यहां तो मुक्तिकोपनिषद् में 108 उपनिषदों का क्रमबद्ध विवेचन है और उसको हम परम प्रमाण रूप में स्वीकार करते हैं। वैसे तो आजकल जो उपनिषदें उपलब्ध हैं वे लगभग 222 के करीब हैं। हमारे यहां उसी मुक्तिकोपनिषद् में यह बात समझाई गई है कि वेद की 1180 शाखाएं हैं और प्रत्येक शाखा की एक उपनिषद् है। इसका अभिप्राय कि 1180 उपनिषदें प्राचीन काल में थी लेकिन आज उपलब्ध नहीं हैं। उसमें से कुछ निकाल करके लोग ला रहे हैं। कहीं से धीरे–धीरे मिल रही हैं। आज 222 उपनिषदें उपलब्ध हैं। उन उपनिषदों में योग की क्रियाओं का बड़ा विस्तार के साथ वर्णन है। मुद्राओं का तथा आसनों का भी वर्णन है। चक्रों का वर्णन आपको अथर्ववेद में मिलेगा। वैदिक साहित्य से ही इसका प्रवाह चला आ रहा है। मैं आपको आठ ग्रन्थियों की बात बता रहा था –

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।

(अथर्व0 १०/२/३३–३१)

यह अथर्ववेद का मन्त्र है। मेरे कहने का अभिप्राय कि वैदिक काल से लेकर अब तक हमारे तत्त्वद्रष्टा मनीषियों ने इन विषयों पर बहुत खोज की है। खोज करके उन्होंने शरीर विज्ञान की दृष्टि से शरीर के अंगों को नियन्त्रित करने की दृष्टि से यौगिक क्रियाओं की प्रतिष्ठा की है। आयुर्वेद का सबसे महान् ग्रन्थ

चर्क संहिता है। चर्क संहिता में शरीर, मन और बुद्धि, इन तीनों को स्वस्थ रखने की व्यवस्था की गई है। चर्क संहिता में जहां पर त्रिविध प्रकार के रोगों से मुक्ति की व्यवस्था है वहां पर योग को भी प्रतिष्ठित किया गया है। वहां औषधि, मन्त्र और योग, ये तीनों हैं। अनेक प्रकार के रोगों के निदान के लिए समाधि की भी बात कही गई है। अब पश्चिम के लोग इस पर खोज कर रहे हैं। भारत के लोग तो पुस्तकें रख कर पूजते हैं और पश्चिम के लोग इन विषयों पर खोज कर रहे हैं, अनुसन्धान कर रहे हैं। अनेक प्रकार के यन्त्रों के द्वारा उसको समझ रहे हैं।

आसन भी एक विशेष प्रक्रिया से किया जाता है। केवल शरीर को मोड़ने–तोड़ने का नाम आसन नहीं है। प्राण और मन की गति के साथ आसन की व्यवस्था है। आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बन्ध और षट्कर्म की बड़ी महत्ता है। षट्कर्मों में नेति गर्दन से ऊपर की सफाई के लिए है, धौति गर्दन से पेट तक की सफाई के लिए है। बस्ती नाभि से नीचे पांव तक की सफाई के लिए है। ये तीन क्रियाएं शुद्धि के लिए हैं। यदि आप ध्यान में बैठे और ध्यान आपका लग गया और आपके शरीर में मल जमा है तो थोड़ी देर बाद सड़ना शुरू हो जाएगा इसलिए उसकी ऊर्ध्व गति हो जायेगी क्योंकि आपकी चेतना ऊर्ध्व दिशा में प्रवाहित हो रही है। वह जब उर्ध्व दिशा में जाएगा तो आपके सिर में दर्द शुरू हो जायेगा। आप जब ध्यान से उठेंगे तो सर लेकर बैठ जायेंगे कि यह क्या हो गया? ध्यान में बैठने से पहले आपके लिए क्रिया बताई गई है कि पहले तो आप शोधन करो नेति,धौति और बस्ती के द्वारा फिर एक शंख प्रक्षालन प्रक्रिया है जिससे आप जैसे पानी पीते हैं ऐसा ही पानी पानी अन्दर से निकले। लोग कहते हैं कि दूध पेट में जाते ही फट जाता है लेकिन मैंने ये क्रियायें करके देखी हैं, कराकर भी देखी हैं। दूध जैसा आप पीयेंगे उसी प्रकार गुदा के रास्ते से निकल जायेगा। जैसा पानी आप पीते हैं ऐसा ही साफ पानी यदि आपके गुदा के रास्ते से निकल जाए तब जानिए कि आपका पेट बिल्कुल साफ हो गया है। अब आप ध्यान में बैठने के काबिल हो गए हैं। उस अवस्था में आप दो चार दस दिन ध्यान में बैठे रहिए शरीर में कोई मल नहीं है इसलिए आपको रोग नहीं होने का। कोई खतरा नहीं है। मैं तो आपके उदयपुर में बैठ करके यह करता रहा हूँ। मेरा कहने का अभिप्राय कि ये जो क्रियायें हैं नेति, धौति, बस्ती, कपाल भाति, नेवली और त्राटक, ये षट् कर्म कहे जाते हैं। इनका अपना महत्त्व है। यहां इन्हीं कर्मों की तरफ संकेत है।

ये सारे कर्म उसमें हेतु बनते हैं। आपका शरीर भी स्वस्थ रहता है,

दिमाग भी स्वस्थ रहता है और आप एक आसन से घंटों बैठ सकते हैं, उसमें जरा भी व्यवधान नहीं आएगा। मैं जिस आसन पर बैठ करके आप लोगों से चर्चा करता हूँ मेरा उस आसन पर 16–16 घंटे बैठने का अभ्यास रहा है। उस अवस्था में तो पता नहीं कितने घंटे बीत जाते थे लेकिन अभ्यास के समय की बात बता रहा हूँ। ये क्रियाएं आपके लिए बड़ी उपयोगी हैं। आप गृहस्थ हैं, घबराने की जरूरत नहीं है। गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी आप इन क्रियाओं को कर सकते है। यदि कोई अच्छा योगी समझाने वाला मिले तो आप इन क्रियाओं को कर सकते हैं। इन से आप लाभ भी उठा सकते हैं। ये आपके चित्त की एकाग्रता में सहयोगी क्रियाएं हैं इसीलिए योगियों ने इनका आविर्भाव किया है। इन क्रियाओं का विशेष रूप से उपनिषदों, हठयोग प्रदीपिका, गोरक्ष पद्धति तथा घेरण्ड संहिता इत्यादि पुस्तकों में वर्णन है। इन क्रियाओं के द्वारा आप अपने शरीर का, मन का, इन्द्रियों का शोधन करें। इनकी शक्ति भी बढ़ जाती है।

एक बात और याद रखें। आप जानते हैं कि सामान्य रूप से जो श्वास आपका आता जाता है वह तो बहुत थोड़ा होता है। मुश्किल से किसी का चार अगुल, किसी का पांच अंगुल और किसी का आठ अंगुल होगा। इतनी दूरी से ही आप श्वास ले पाते हैं। जब आप गहरी श्वास लेते हैं उसके लिए बताया गया है कि कम से कम 12 अंगुल बाहर से आपका श्वास आवे और जब आप श्वास बाहर फेंकते है तो कितनी दूर तक उसकी गति जाती है, इसको भी आप मापिए। जब श्वास आप बाहर फेंकते हैं तो नाभी के नीचे से अपान वायु को खींच करके आपको फेंकना है। जब बाहर फेंकेंगे तो कितनी दूर तक इसकी गति है, यह देखना है और कितना नीचे आप ले जा रहे हैं इसका भी आप अनुभव कर सकते हैं। भगवान् ने तो गीता के चौथे अध्याय में बताया कि–

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।

(गीता ४/२९)

आप प्राण वायु को इतनी तीव्र गति से खींचिए कि वह आपके हृदय तक न रह जाए वह अपान वायु तक यानी नाभी के नीचे तक पहुंच जाए। आपको अनुभव हो कि वायु वहां तक पहुंच गई है और उतना भाग आपका वज़नदार हो जाए। हमारे यहां यौगिक क्रियाओं में तो यह बताते हैं कि वहां हाथ रख लीजिए आप। हाथ रख करके अब ध्यान कीजिए और वायु को इस हाथ में प्रवेश करवाइये। धीरे–धीरे आप देखेंगे कि आपका हाथ भारी हो जाएगा। आप अनुभव करेंगे कि ... क्योंकि वायु वहां पहुंच जाएगी। इससे

वायु आपके संकल्प के साथ चलने लगती है। जहां आप संकल्प करेंगे वायु वहीं चली जाएगी। मैंने ये सारी क्रियायें की हैं। जब मैं विदेश गया तो ये सारी क्रियायें मैंने वहां भी करके दिखलाई और उन्हें भी सिखाया। इसी नाते उनकी श्रद्धा भी हुई और वे लोग इस विषय में काम भी कर रहे हैं।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि ये क्रियायें आपके योगारूढ़ होने में सहयोगी हैं। भगवान् ने यहां जो कर्म की बात की है वह यह कर्म नहीं जो रातों-दिन आप करते रहते हैं अपितु योग से सम्बन्धित कर्म है। योग से सम्बन्धित कर्म माने आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और इनके द्वारा संशोधन की क्रियाएं, षट् कर्म, मुद्राएं और मन्त्र। इन कर्मों का आश्रय ले करके आप अपने प्राण को अपने अधीन करेंगे फिर उसके पश्चात् चित्त को यानी अपने मन को अपने अधीन करने में सक्षम हो जाएंगे। एक बार यदि मन को इधर का स्वाद मिल जाए तो फिर वह कहीं भी नहीं जाता। मन की बड़ी सीधी सी स्थिति है कि जिसकी महत्ता वह समझता है उसी का चिन्तन करता है। आप देखिए अपने मन को जिसकी महत्ता, जिसका मूल्य आप समझते हैं आपका मन उसी में लगता है। जिसके मूल्य को आप अस्वीकार कर देते हैं आपका मन कभी उधर नहीं जाता। अब आप किसको मूल्यवान स्वीकार करते हैं यह तो आप जानें। जिस को आप मूल्यवान समझते हैं आपका मन उसी का चिन्तन करता रहता है। यदि आप अपनी आत्मा के मूल्य को समझो और आत्म तत्त्व को प्राप्त करने के लिए आप प्रयत्नशील हों तो आपका मन ऊर्ध्वमुखी हो जाएगा, आत्म तत्त्व की ओर प्रवाहित हो जाएगा। यदि आप संसार को मूल्यवान समझते हैं, धन, पद, पदार्थ या किसी प्राणी को मूल्यवान समझते हैं तो आपका मन उधर लगा रहेगा। लाख प्रयत्न कीजिए वहां से मन नहीं हटने का क्योंकि उसके मूल्य को आपने स्वीकार किया है। जो मूल्यवान है उसको पाने से ही हमें तृप्ति होगी ऐसा आपने स्वीकार कर लिया है। मूल्य का निर्धारण कौन करता है? आपकी बुद्धि। बुद्धि ने जिसका मूल्य स्वीकार कर लिया लाख प्रयत्न करें मन आपका वहीं जाकर लगेगा इसीलिए गीता के तीसरे अध्याय में भगवान् ने बताया कि भई ! देखो तुम शरीर नहीं हो, इन्द्रियां नहीं हो-

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः।।

(गीता ३/४२)

तुम मन भी नहीं हो मन से परे तुम्हारी बुद्धि है और जो बुद्धि से परे है

वह तुम हो–

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना।

(गीता ३/४३)

इसलिए तुम अपनी बुद्धि को अस्त्र बना करके अपने मन को कन्ट्रोल करने का प्रयत्न करो। यहां आत्मना 'आत्मानम' का अभिप्राय होता है कि बुद्धि के द्वारा मन को नियन्त्रित करना। यह साधना सारी बुद्धि से सम्बन्धित है। बुद्धि से सम्बन्धित साधना से आपको सफलता तब मिलेगी जब सबसे पहले आप अपने इन यन्त्रों को जो साधन हैं अपने कन्ट्रोल में रखो। प्रत्येक आदमी या तो शरीर के स्तर पर है या ऐन्द्रिक स्तर पर या मानसिक स्तर पर। अधिकांश आदमी तो शारीरिक और ऐन्द्रिक स्तर पर ही होते है। कैसे पता चले कि हम शारीरिक स्तर पर हैं या ऐन्द्रिक स्तर पर हैं? जब तक आप शरीर में आसक्त हैं तो आप स्थूल स्तर पर हैं, परिवार में आसक्त हैं तो आप ऐन्द्रिक स्तर पर हैं क्योंकि सारा परिवार शरीर या इन्द्रियों से बना है। समझ लो आप। जब आप जन्मे तो जन्म से आपका परिवार बन गया। परिवार में कौन है? माता, पिता, भाई और पितृ पक्ष के सभी लोग चाचा, ताऊ इत्यादि जो कुछ रिश्ते आपके हैं, ये सबके सब आपके शरीर से बने हैं। इनके प्रति आपने अपना कर्त्तव्य स्वीकार किया है कि हमारा धर्म है इनकी सम्भाल करना। पहले अपने पितृ पक्ष की बात करता है फिर ससुराल की बात करता है। ये सारे सम्बन्ध ऐन्द्रिक हैं। यहां से आगे जो सन्तान होती है सब इन्द्रिय–जन्य है।

आपके शरीर में जो आठ चक्र हैं, इन में दो चक्र हैं मूलाधार और स्वाधिष्ठान चक्र। मूलाधार चक्र तो शरीर का आधार है और स्वाधिष्ठान चक्र आपकी इन्द्रियों के संसार का। शरीर और संसार इसी में आप व्यस्त हैं इसलिए इनसे ऊपर आप उठ ही नहीं सकते। यदि इन दोनों में आप व्यस्त रहेंगे तो अपनी चेतना को आप कहाँ से सम्भालेंगे? इन दोनों स्तरों से अपने आपको ऊपर उठाने का प्रयत्न करना चाहिए। जब तक इनके लिए आप सक्रिय हैं, इनके मूल्य को आप स्वीकार कर रहे हैं तब तक आपका मन आपके कारण रूप विशुद्ध चेतन में लग जायेगा, असम्भव है। फिर क्या करें? इनका त्याग करदें? न, न त्याग करके इनसे कोई लाभ नहीं होने का। त्याग कहते किसे हैं? यहां से छोड़ कर वहां बैठ जाने का नाम त्याग है क्या? नहीं, नहीं। ग्रहण किसको किए हैं कि आप त्याग करेंगे? किसी को पकड़ कर रखते है क्या? नहीं तो। गीता कहती है कि इनसे असङ्ग हो जाइये। इनमें आसक्ति आपके लिए बन्धन में हेतु होती है। किसी का

होना कुछ अर्थ नहीं रखता यदि उसमें आपकी आसक्ति न हो। जैसे मैंने एक दिन उदाहरण दिया था कि सरकारी बंगले में रहने वाला एक आफिसर सभी सुविधाओं का उपयोग करता है लेकिन उसके अन्तर में यह बिल्कुल निश्चित है कि यह सरकार का बंगला है मेरा नहीं है। जिस दिन उसका वहां से तबादला होता है या वह रिटायर्ड होता है तो उसको छोड़कर जाते समय वह रोता नहीं है और बंगले को प्रणाम नहीं करता कि तू मेरे से अलग हो रहा है। इसी स्थिति का नाम वैराग्य है। योग शास्त्र में, गीता में आप सर्वत्र देखेंगे कि वैराग्य की बात की गई है। वैराग्य माने राग रहित हो जाना। राग माने आसक्ति। वहां रहते हुए भी आप अनासक्त हो सकते हैं। व्यवहार करते हुए भी आप राग रहित हो सकते हैं। इसके लिए भगवान् कृष्ण ने स्वयं अपने जीवन को प्रमाण रूप में प्रस्तुत किया है–

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।

(गीता ३/२०)

जनक आदि सम्राटों को इसके लिए उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है। यह प्रक्रिया सम्भव है, असम्भव नहीं है। याद रखो जब आंपकी बुद्धि में आत्म तत्त्व का मूल्य बढ़ जायेगा, आप यह समझेंगे कि आत्म तत्त्व ही मूल्यवान् है, वहीं हमारे जीवन का आधार है, तब आपकी इसमें से आसक्ति नष्ट होगी अन्यथा नहीं। जब तक शरीर का मूल्य है, इन्द्रियों का मूल्य है, इनके सम्बन्धियों का मूल्य है तब तक आप इनसे छुटकाना नहीं पा सकते। गीता के अठारहवें अध्याय के अन्त में भगवान् ने संदेश देते हुए कहा कि यह मेरा गुह्यतम संदेश है –

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

(गीता १८/६६)

गुह्यतम संदेश का लक्षण क्या है? 'सर्वधर्मान् परित्यज्य!' वहां किन सब धर्मों की बात कही है? वहां हिन्दू धर्म, ईसाई धर्म अथवा मुस्लिम धर्म की बात है क्या? नहीं, नहीं, तब तो ये सारे पैदा ही नहीं हुए थे। उन दिनों तो इन धर्मों का कहीं पता ही नहीं था। यहूदी धर्म भी उसके बाद में पैदा हुआ है। यहूदी धर्म को पैदा हुए केवल चार हज़ार वर्ष हुए हैं और भगवान् को गीता का उपदेश दिए पांच हज़ार से ज्यादा वर्ष हो गए हैं, ईसाई तो अभी कल पैदा हुए हैं। इस्लाम तो उसके भी बाद में पैदा हुआ है। जो अभी तथाकथित धर्म और पंथ निकले हैं वो तो अभी कल के हैं। इनका तो कोई ऐतिहासिक अस्तित्त्व ही नहीं है तो उस समय किन धर्मों की बात कही थी भगवान् ने?

गीता का संदेश शाश्वत संदेश है। शाश्वत संदेश में किसी तथाकथित धर्मों की चर्चा नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति के साथ जुड़े हुए धर्मों की चर्चा है। वहां पर शारीरिक धर्म, ऐन्द्रिक धर्म, मानसिक धर्म, बौद्धिक धर्म, ये सारे धर्म हैं। शारीरिक धर्म से आप उन सम्बन्धों से जुड़े हुए हैं, उनके प्रति आपकी निष्ठा है कि यह मेरा कर्त्तव्य है, इसे जरूर करना है। इसी रूप से ऐन्द्रिक धर्मों से आप जुड़ गए कि अब यह मेरा कर्त्तव्य हो गया है, इसको जरूर करना है। फिर मानसिक धर्मों से आप जुड़ गए हैं कि यह मेरा कर्त्तव्य है। इससे ऊपर उठे तो आप बौद्धिक धर्म से जुड़ गए और कहने लगे कि यह मेरा कर्त्तव्य है, इसको जरूर करना है लेकिन आत्म तत्त्व में आपकी निष्ठा ही नहीं हुई। उसका मूल्य ही नहीं समझा आपने। यदि आत्म तत्त्व में निष्ठा हो जाए आपकी तो ये सारे धर्म समाप्त हो जायेंगे। इन धर्मों का कहीं अस्तित्व नहीं रहेगा क्योंकि सारे धर्म आपके व्यष्टि भाव से सम्बन्धित हैं। आत्म तत्त्व आपका व्यष्टि भाव से सम्बन्धित नहीं, वह तो व्यष्टि भाव का प्रकाशक है, वो तो उससे परे की बात है।

यहां एकम् अर्थात् एकत्व तो आत्म तत्त्व में है बुद्धि में एकत्व कहां है? मन में एकत्व कहां है? इन्द्रियों में एकत्व कहां है? शरीर में एकत्व कहां है? यहां तो विभिन्नता है। विभिन्नता, अनेकता का अस्तित्व तो आपकी बुद्धि तक है। बुद्धि से ही अनेकता प्रारम्भ हुई है और बुद्धि तक अनेकता की सीमा है। जहां तक अनेकता है वहां अनेक प्रकार के धर्मों का अस्तित्व है इसीलिए भगवान् ने कहा कि ये सभी परधर्म हैं। गीता के तीसरे अध्याय में भगवान् ने कहा है –

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।

(गीता ३/३५)

स्वधर्म में यदि अपना निधन भी हो जाए माने अपनी आत्मा का लय भी हो जाए तो भी तुम्हें मुक्ति मिल जाएगी। स्वधर्म माने अपनी आत्मा का धर्म और परधर्म माने प्रकृति से सम्बन्धित सारे धर्म। बुद्धि से लेकर शरीर तक प्रकृति से सम्बन्धित हैं इसलिए इनका धर्म प्राकृत धर्म है। यह परधर्म है स्वधर्म नहीं है। स्व तो आत्मा के लिए सम्बोधन होता है। स्वधर्म माने आत्म धर्म। वही स्वधर्म ही सनातन धर्म कहा जाता है क्योंकि शरीर सनातन नहीं है, इन्द्रियां सनातन नहीं हैं, मन सनातन नहीं है और बुद्धि भी सनातन नहीं है। सनातन क्या है?

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।

(गीता २/२०)

सनातन तो आपकी आत्मा है। कौन सा धर्म सनातन होगा जो हम कहते

है कि हम तो सनातन धर्मी हैं। सनातन धर्मी माने आत्म धर्म में आस्था रखने वाले। भ्रान्ति इतनी आ गयी है कि क्या बतायें। हम शरीर के धर्म में विश्वास कर रहे हैं, इन्द्रियों के धर्म में विश्वास कर रहे हैं, मन के धर्म में विश्वास कर रहे हैं, बुद्धि के धर्म का तो पता ही नहीं। अपने को इसी में लटकाये हुए हैं। यह जातिवाद कहां से आया, जानते हो? किसकी देन है यह, कल्पना कीजिए, जरा सोचिए? अपनी बुद्धि लगाइये। यह आत्मा से सम्बन्धित है क्या? नहीं, बिल्कुल नहीं। आत्मा के क्षेत्र में तो इसका जिक्र भी नहीं है कहीं पर। फिर कहाँ सम्बन्धित है? बुद्धि से सम्बन्धित है? नहीं।जब आप बाह्यमुखी होते हैं तब वहां पर आपके सामने ये सारे प्रपंच आ जाते हैं। आज जितने विकृत स्वरूप आप देख रहे हैं ये सनातन धर्म नहीं हैं। न ये सनातन धर्म के अंग ही हैं। सनानत आपकी आत्मा है। आत्म धर्म ही सनातन धर्म है। आत्मा में अचल निष्ठा ही सनातन धर्मी का लक्ष्य है। आत्मा और परमात्मा की अभिन्नता की अनुभूति ही उसका ध्येय है। आत्मा परमात्मा की एकता की अनुभूति को हमारे यहां योग कहते हैं और उसी मार्ग का निर्देश कर रहे हैं गीता में भगवान्। अच्छा आप बताइये 'सर्वधर्मान् परित्यज्य' की सीख सुनने वाला अर्जुन युद्ध किया कि छोड़ दिया? युद्ध किया। धनुष उठा लिया और कहता है कि 'करिष्ये वचनं तव' अब मैं युद्ध करूंगा। यदि सनातन धर्म माने आत्मधर्म में प्रतिष्ठित होने वाला निष्क्रिय हो जाता तो अर्जुन युद्ध के लिए कैसे खड़ा होता? फिर अर्जुन का सम्बन्ध दुनिया से रहा कि नहीं रहा? रहा। वह अपने परिवार की सम्भाल करता रहा कि नहीं करता रहा। वह सब कुछ करता रहा। आत्मधर्म में प्रतिष्ठित होने पर आप यदि यह सोचें कि यह सारी दुनिया समाप्त हो जाएगी तो यह भी आपकी भ्रान्ति है। आत्म धर्म में प्रतिष्ठित होने पर इन दुनिया के धर्मों का मूल्य आपकी दृष्टि में नहीं रह जायेगा। यह दुनिया आपके लिए केवल व्यवहारिक होगी।

हमारे यहां दार्शनिकों ने दो प्रकार की सत्ता का निर्देश दिया है – एक व्यवहारिक सत्ता और दूसरी पारमार्थिक सत्ता। एक बार एक वैज्ञानिक से मैं चर्चा कर रहा था। मैं इस विषय में Trustial truth तथा Real truth की बात कर रहा था। वह कहता है कि यह कैसे हो सकता है? सत्य को आप दो भागों में कैसे बांट सकते हैं? बांट सकता हूँ। हम कहा कि जैसे आप जानते हैं कि अन्न तथा पत्थर ऊर्जा का ही परिणाम हैं परन्तु यदि तुम्हें भूख लगेगी तो तुम पत्थर चबाओगे या अन्न? कहा कि अन्न खाऊँगा। मैंने कहा कि तुम पत्थर क्यों नहीं चबाते, वो भी तो ऊर्जा का ही परिणाम है? पारमार्थिक सत्ता तो दोनों में एक है। पारमार्थिक

सत्ता में कोई भेद नहीं है। भेद किसमें है? व्यवहारिक सत्ता में लेकिन जब भूख लगेगी तो तुम पत्थर नहीं खाओगे अन्न खाओगे। इसको व्यवहारिक सत्ता कहते हैं। पारमार्थिक सत्ता का बोध होने पर तुम व्यवहारिक सत्ता को अस्वीकार कर देते हो क्या? यदि ऐसा होता तो सारे वैज्ञानिक पत्थर चबाना शुरू कर देते क्योंकि उन्होंने अनुभव कर लिया है कि ऊर्जा ही प्रत्येक पदार्थ के रूप में है लेकिन ऐसा नहीं होता । मेरा कहने का अभिप्राय कि जब आपको पारमार्थिक सत्ता का बोध हो जाएगा तो इसका अभिप्राय यह नहीं कि आप व्यवहारिक सत्ता की उपेक्षा कर देंगे। हां, व्यवहारिक सत्ता में आपकी आसक्ति नहीं होगी। ऐसे योगी के लिए बताया गया है –

समलोष्टाश्मकाञ्चनः।

(गीता ६/८)

योगी की दृष्टि में पत्थर, मिट्टी और सोना बराबर होता है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, वह सोने को सोना मानता ही नहीं, ऐसी बात नहीं है। उसकी दृष्टि में इसका मूल्य समाप्त हो जाता है। सोने के लिए अब उसके दिमाग में Temptation नहीं रहती। वह जानता है कि वह उसके किसी काम का नहीं है। मिट्टी में फिर भी अन्न डाल करके उत्पादन किया जा सकता है जिससे भूख चली जाती है लेकिन सोने से तो कुछ नहीं होता। भूख लगेगी तो सोना खाओगे क्या? सोना पीओगे? सोना ओड़ के सोवोगे? सोना को बिछाओगे? वह तो किसी काम का नहीं है। तुम्हारे दैनिक जीवन में सोने का कोई प्रयोग नहीं है। करोड़ों नहीं अरबों आदमी होंगे जिनके पास सोना नहीं है, वे सुख से जी रहे हैं लेकिन आज बहुत से ऐसे लोग हैं जो सोने के लिए रातों–दिन मर रहे हैं। जितना कतले–आम सोने के लिए हुआ क्या उतना कतले–आम कभी मिट्टी के लिए हुआ? नहीं। लूट किसकी होती है? सोने की। अब योगी की दृष्टि में सोने का मूल्य समाप्त हो गया, यह तो किसी काम का नहीं है।

आप लोगों ने सुना होगा, हमारे यहां एक महापुरुष हुए हैं, उनका नाम था मत्सेन्द्रनाथ। वो गोरक्षनाथ के गुरु थे। योग पथ के प्रवर्तक थे। वो एक बार भिक्षा में गए। उनके पास एक धूर्त आ गया। उसने उनके चरणों में प्रणाम करके रोते हुए कहा – प्रभो! मैं बहुत दुःखी हूँ। मेरी बड़ी–बड़ी लड़कियां हैं, उनकी शादी के लिए मेरे पास कोई साधन नहीं है। मैं गरीब आदमी हूँ, मेरे पर कृपा कर दो जिससे मैं अपनी लड़कियों की शादी कर दूँ। सही में न तो उसके पास कोई लड़कियां थीं और न उनकी शादी ही करनी थी। वह धूर्त आदमी था। किसी

प्रकार से महात्मा से अपने प्रति दया दिखला करके कुछ चाहता था। मत्सेन्द्रनाथ तो महायोगी थे, उन्होंने नेत्र बन्द करके देखा कि यह तो धूर्त है। इसके न कोई लड़की है न कोई इसको विवाह ही करना है। उन्होंने उसे कहा कि अच्छा, तुम्हें क्या चाहिए? उसने कहा कि प्रभु की कृपा हो जाए, थोड़ा सा सोना मिल जाए। कहा कि सोना? हाँ। कहा कि जाओ मैं तुम्हें वरदान देता हूँ जिस वस्तु को तुम छुओगे सोना हो जाएगा। वह खुश हो गया। योगी का वरदान तो मिथ्या हो नहीं सकता।

वह वहाँ से दौड़ा और आया अपने घर में। अपनी पत्नी को आवाज़ दी कि अब मैं सम्पन्न हो गया। स्त्री ने पूछा क्या हुआ? कहा कि भगवान् मत्सेन्द्रनाथ ने मुझे वरदान दिया है कि जिस वस्तु को छुऊंगा वह सोने की हो जाएगी। जाकर दरवाजे के सामने जो खम्भा था उसको छू दिया, वह सोने का बन गया। जब आगे बड़ा तो स्त्री ने कहा कि दूर ही रहो, मेरे पास नहीं आना। अब उसका छोटा लड़का था वह दौड़ा पिता–पिता कह करके । स्त्री ने उसे भी पकड़ लिया, कहा नहीं बेटे! वहां नहीं जाना। अब वह कहने लगा कि मुझे प्यास लगी है। स्त्री ने पानी लाकर रख दिया। जब गिलास उठाया तो वह सोने का हो गया। जब मुंह लगाया तो पानी सोने का बन गया। कहा कि मुझे भूख लगी है। स्त्री ने दूर से रोटी दे दी। रोटी हाथ में ली तो सोने की हो गई। अब खाना–पीना मुश्किल हो गया। परिवार के लोग दूर भाग गए। अगल–बगल के लोग भी उसके पास न आवें कि कहीं छू न ले तो सोने का न हो जाऊँ। भगवान् मत्सेन्द्रनाथ की जीवनी में यह बहुत ही अद्‌भुत घटना बताई गई है। अन्त में बेचारा परेशान होकर के योगीराज को ढूंढने लगा कि कहीं मिल जाएं तो मैं हाथ जोड़ कर कहूँ कि अपना वरदान वापिस ले लें क्योंकि जो वस्तु छुए वही सोना हो जाए। अन्त में जब व्याकुल होकर गिर गया तो वहां मत्सेन्द्रनाथ फिर प्रकट हो गए। उन्होंने कहा कि वत्स! अब तुम्हें क्या चाहिए? कहा कि मुझे कुछ नहीं चाहिए आप अपना वरदान वापिस ले लें।

मेरा कहने का अभिप्राय कि जब आपको यह बात समझ में आ जायेगी कि जिन पदार्थों की हम बहुत महत्ता स्वीकार करते हैं वो हमारे लिए व्यर्थ हैं, वो हमारे लिए उपयोगी नहीं है तो आप संग्रह में प्रवृत्त नहीं होंगे। आप ज़रा सोचिए! आप दुनिया में जो भी कुछ चीज़ लेते हैं सबका कुछ न कुछ मूल्य चुकाते हैं। चुका रहे हैं न? लेकिन आपके लिए जो सबसे आवश्यक पदार्थ है उसका आप क्या मूल्य चुका रहे हैं? वह पदार्थ क्या है? आक्सीज़न, उसका कोई मूल्य चुका रहे

हैं? सरकार का कोई टैक्स है उसके ऊपर? क्या सरकार कल से ऐसा आदेश दे सकती है कि इतना सांस लेने वालों के ऊपर इतना टैक्स लगेगा? नहीं, असम्भव। अच्छा आप यह बताइये कि विद्वान्–अविद्वान्, ऊँच–नीच, मनुष्य तथा कुत्ता सब एक जगह बैठे हुए हैं और सभी जीवनी शक्ति जो आक्सीजन है, वह कहां से ले रहे हैं? एक स्रोत से। आप देख रहे हैं सबकी जीवनी शक्ति का स्रोत एक है और कोई यह नहीं कह सकता कि यह स्रोत मेरा है। क्या कभी ध्यान जाता है कि हम सबके जीवन का स्रोत एक है। जब कोई कहता है कि सबकी आत्मा एक है तो लोग चौंक जाते हैं लेकिन यह नहीं देखते कि सबकी आत्मा ही नहीं सब के प्राण भी एक हैं। आत्मा तो एक है यह बहुत ऊपर की बात है, इसकी अनुभूति तो आप बाद में करेंगे लेकिन सबके प्राण एक हैं कि नहीं हैं? जब सबके प्राण एक हैं, सभी प्राणियों के प्राण का स्रोत एक है तो वहां पर द्वैत कहां से आ गया? वहां भेद कहां से आ गया? वहाँ एक मूल्यवान् और दूसरा मूल्यहीन कैसे हो गया? ज़रा कल्पना तो कीजिए। इसी सत्य का उद्घाटन करने के लिए भगवान् यहां पर संकेत करते हैं। यह तो तुम देख सकते हो। आत्मा एक है इसको तो तुम बाद में समझोगे लेकिन प्राण एक है यह तो तुम समझ सकते हो। यहां तक तो तुम्हारी बुद्धि का प्रवेश है। आराम से तुम इसे जान सकते हो इसलिए कर्म से जब ऊपर उठोगे तो?

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।

(गीता ६/३)

योग की परिणति किसमें होती है? योगारूढ़ किसे कहते हैं? कहा कि जिस अवस्था में तुम्हारी चेतना जैसे प्राण शान्त हो जाता है और आपको प्राण की व्यापकता का बोध होता है इसी रूप से जब आपके विचार, आपके मन की गति शान्त हो जाए और समस्त प्राणियों में एक ही चेतना की अनुभूति होने लगे तो उसको कहते हैं शम। अब वह शम जो है वह कारण होता है। दम कहते हैं इन्द्रियों को अपने आश्रित करने को। शम कहते हैं मन की शान्ति को। जहां मन कन्ट्रोल में आ जाए, मन का नियमन हो जाए, वह शम कहा जाता है। जहाँ इन्द्रियों का नियमन हो जाए, उसको दम कहते हैं।

मैं आप लोगों को बता रहा था कि जिस समय ध्यान के माध्यम से यानी यौगिक क्रियाओं के माध्यम से धीरे–धीरे अपने प्राण को सूक्ष्म और व्यापक रूप में अनुभव करने लगते हैं तो उस अवस्था में आप चित्त को शान्त बनाने की दिशा में आगे बढ़ते हैं। महर्षि पतंजलि ने कहा है –

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम्।

(यो0 सू0 २/४७)

अनन्त में समापत्ति। यह आपका स्पेस ऊर्जा का समुद्र है। वेद में आकाश को ऊर्जा का समुद्र कहा गया है। यजुर्वेद का प्रारम्भ ही इस मन्त्र से होता है –'ऊर्जेत्वा' यह ऊर्जा का समुद्र है। जब आप अपने चित्त को अनन्त में लगायेंगे, ऊर्जा में लगायेंगे यानी प्राण के स्त्रोत में लगायेंगे तो आप को अनन्तता की अनुभूति होगी। सीमा से आप मुक्त होंगे। सीमा से मुक्त होते ही आपका मन धीरे–धीरे एकाग्र होने लगेगा। आपके मन को दौड़ने के लिए अनेकों चीज़ें चाहिए। इसको कहते हैं अनेकता। अनेकता सीमा में है। जब आप अपने आपको इस स्पेस में प्रतिष्ठित करने का अभ्यास करेंगे, प्राण की अनन्तता का आपको जब बोध हो जायेगा तो अपने आप सीमा समाप्त हो जायेगी, भूमा में आपकी प्रवृत्ति हो जायेगी। भूमा में प्रवृत्ति होते ही उपनिषद् की यह घोषणा आपके जीवन में चरितार्थ होने लगेगी –

यौ वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति।

भूमा ही सुख का स्त्रोत है अल्प नहीं है, सीमा नहीं। सीमा से मुक्त होकर भूमा में प्रतिष्ठित होने की दिशा में आप अग्रसर हो जायेंगे। उस अवस्था को ही कहते हैं शम। तो–

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।

(गीता ६/३)

भगवान् ने कहा कि बहुत बोल दिया, शेष बाद में बताना।

हरि ॐ तत्सत्

उदयपुर
21.03.1998
सायं

१०

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ!

करुणानिधान भगवान् की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यह मेरी आन्तरिक शुभ कामना। आज हमारे इस ज्ञान सत्र का पांचवां दिन और दसवीं बैठक है। आप लोगों को इन पांच दिनों में जीवन की एक विशेष प्रणाली जो कि सहस्राब्दियों तक भारत के लोगों में प्रचलित थी, जो काल क्रम के प्रवाह में अब लुप्त प्रायः हो गई है, उसके सम्बन्ध में मैंने विचार दिए हैं। मैं कोई नई जीवन प्रणाली आपको नहीं सिखा रहा। यह भारत की सहज जीवन प्रणाली है। यदि सहज जीवन प्रणाली न रही होती तो भारत का एक राजा अश्वकेतु ऋषियों के सामने यह प्रतिज्ञा न करता कि–

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्यो न मद्यपो
नाना हिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणी कुतो।
(छान्दोग्य० ५/११–५)

मेरे राज्य में कोई चोर नहीं, कोई कंजूस नहीं, कोई मदिरा पीने वाला नहीं, कोई अयाज्ञिक नहीं तथा कोई अविद्वान् नहीं है। मेरे राज्य में जब व्यभिचारी पुरुष ही नहीं है तो व्यभिचारिणी स्त्रियां कहां से मिलेंगी? यह हमारे इतिहास का गौरवमय स्वरूप रहा है। इस गौरवमय स्वरूप में हेतु क्या रहा है? योगमय जीवन। भारत की संस्कृति कभी भी भोग प्रधान नहीं रही है, योग प्रधान रही है। हमारी सभ्यता, संस्कृति, हमारा धर्म,

हमारे जीवन की प्रणाली सदैव योग प्रधान रही है। हम आप आत्मनिष्ठ जीवन जीने के अभ्यस्त रहे हैं, शरीर निष्ठ जीवन जीने के अभ्यस्त नहीं रहे। जो शरीर निष्ठ जीवन जीने के अभ्यासी हैं, वो भोग मार्गी हैं और जो आत्मनिष्ठ जीवन जीने के अभ्यासी हैं उनको योग मार्गी कहते हैं। हम आज से नहीं अनादि काल से योग मार्गी रहे हैं। दुर्भाग्य से 900 वर्षों की जो हमारी दास्ता रही वो हमारे उन प्राचीन आदर्शों को, प्राचीन आस्थाओं को, प्राचीन संस्कारों को नष्ट करने में बहुत कुछ कारण बनी। अब स्वतन्त्रता के पश्चात् जो दुर्गति हो रही है वो तो आप लोग देख रहे हो। हमारे राजनेता की दृष्टि में जो कुछ भी भारतीय है वह सब त्याज्य है और जो कुछ बाहर का है वह ग्राह्य है।

एक और बात मैं बताऊँ आपको भारत में जब तक मुसलमानों का अत्याचार होता रहा तब तक भारत का साधु समाज सक्रिय था और उसने संघर्ष किया। एक नहीं हज़ारों की संख्या में मृत्यु के घाट उतार दिए गए। उनके पुरुषार्थ का परिणाम यह रहा कि भारतीय धर्म, संस्कृति तथा सभ्यता को सुरक्षित रखने में सहायता मिली। स्वामी रामानन्दाचार्य, उनके शिष्यगण, समर्थ गुरुराम दास जी तथा उनके शिष्य शिवा जी मराठा, पंजाब में श्रीगुरुनानक देव जी से लेकर गुरु गोबिन्द सिंह तक, बन्दा बैरागी तथा उसी कड़ी में मध्य प्रदेश में संत रामप्रकाश इत्यादि संतों के संघर्ष का एक अद्‌भुत इतिहास मिलता है। उनके पुरुषार्थ से मुसलमानों का घोर अत्याचार इस संस्कृति तथा सभ्यता को नष्ट करने में सक्षम नहीं रहा। स्वामी रामानन्दाचार्य जी तीन करोड़ हिन्दुओं को जो मुसलमान बन गये थे परावर्तन संस्कार द्वारा पुनः हिन्दू धर्म में ले आए। अयोध्या का राजा तलवार की नोक पर पूरे परिवार सहित इस्लाम धर्म को स्वीकार किया था, उसको पुनः उन्होंने हिन्दू धर्म में दीक्षित किया। उन्होंने प्रत्येक जाति के लोगों को योग मार्ग का प्रशिक्षण देकर पूर्णत्व तक पहुंचाया। चाहे वो कबीर रहे हों वा रविदास, चाहे सेना रहे हों वा पीपा, चाहे धन्ना रहे हों वा नानक अथवा नरसिंह, ये सब उनके शिष्य थे। ग्यासूदीन के जमाने में स्वामी रामानन्द जी थे। मेरे कहने का अभिप्राय कि इस्लामिक आंधी को सम्भालने में संतों ने सक्रिय भाग लिया। इसके पश्चात् जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन हुआ तब भी संत सक्रिय थे क्योंकि उस समय भी जबरी जैसे पहले मुस्लमान बनाए जाते थे बाद में ईसाई बनाया जाने लगे।

जब 1857 के पश्चात् भारत के ऊपर अंग्रेजी सरकार का शासन हो गया तो उनकी नीति में परिवर्तन हुआ क्योंकि वो बहुत चालाक लोग थे। उन्होंने

देखा कि इस देश पर 700 वर्षों तक मुसलमानों ने अत्याचार किए, इनके ग्रन्थों को नष्ट किया, इनके मन्दिर गिराये, इनके अवशेष तोड़े लेकिन वे इससे कोई लाभ नहीं उठा सके बल्कि संघर्ष बड़ा। अब उन्होंने सोचा कि किस ढंग से इनकी जड़ को काटा जाए? एक मुख्य न्यायधीश सर विलियम जॉनस थे। सबसे पहले उन्होंने संस्कृत पढ करके इग्लैंड वालों को एक दृष्टिकोण दिया कि यहां के लोगों का विश्वास अपने धर्म ग्रन्थों में है और उसको वे ब्रह्म वाक्य, ईश्वर वाक्य मानते हैं। यदि किसी प्रकार उनको प्रदूषित किया जाए, उनको परिवर्तित किया जाए तब हमारा यहां स्थाई शासन हो सकता है। सर विलियम जॉनस की प्रार्थना पर पश्चिम से सात पादरी भारत में आए और उनका अध्यक्ष मैक्समूलर था। उन सातों ने यहां पर संस्कृत पढ़ी। संस्कृत पढ़ करके फिर हमारे ग्रन्थों का उन्होंने अनर्थ करना शुरू किया लेकिन उनकी यह नीति थी कि धार्मिक स्थानों को कुछ मत कहो, महात्माओं को कुछ मत कहो। आपको शायद पता नहीं होगा कि स्वतन्त्रता से पहले यह रेल जहां–जहां जाती थी महात्माओं से टिकट नहीं लिया जाता था। वे फ्री चलते थे। उनको सुविधाएं दी जाती थीं। परिणाम यह हुआ कि महात्माओं ने सोचा कि हमारे धर्म पर ये कोई आघात कर नहीं रहे हैं इसलिए इनके साथ संघर्ष करना व्यर्थ है। यदि धर्म पर आघात करते तब तो संधर्ष के लिए खड़े होते लेकिन उनकी तो राजनैतिक चाल थी। महात्मा लोग हो गए विरक्त।

स्वतन्त्रता संग्राम का प्रारम्भ हुआ बाल गंगाधर तिलक के उस संकल्प से जो उन्होनें 1909 में घोषित किया, ''स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है।'' उन्होंने उसका आधार बनाया भगवद् गीता को। गीता पर उन्होंने 'कर्म विज्ञान' नामक टीका लिखी और विशेष रूप से लोगों में धार्मिक भावना जागृत की। महाराष्ट्र में गणेश चतुर्थी की यात्रा निकाली गई। उसके बाद उन्हीं के प्रभाव को देखकर के आगे जब महात्मा गांधी जी आए तो उन्होंने देखा कि धर्म के नाम पर जनता एकत्रित होती है, राजनीति की जागृति इसमें नहीं है। राजनीति तो जनता सोचती है कि यह राजाओं का काम है, हम तो प्रजा हैं। धर्म के नाम पर उन्होंने 'रघुपति राघव राजा राम, पतित पावन सीता राम' का मन्त्र लिया और फिर जन जागृति उनके साथ हो गई। परिणाम यह हुआ कि स्वतन्त्रता के उस अन्दोलन में जो 1909 से 1947 तक चला उसमें किसी महात्मा ने कोई सक्रिय भाग नहीं लिया। उसका परिणाम यह हुआ कि जब भारत स्वतन्त्र हुआ तो भारतीय जनता ने सोचा कि महात्माओं का काम तो केवल माला फेरना, भजन

करना, पूजा करना तथा मन्दिर सम्भालना है। इनका राजनीति से कोई लेना देना नहीं है। देश में क्या हो रहा है क्या नहीं हो रहा उनसे इन्हें क्या लेना–देना? एक बार स्वामी करपात्री जी ने कहा कि देखो, हम जिधर से निकलते हैं हज़ारों लोग मेरा पांव छूने के लिए तो पहुंच जाते हैं लेकिन जो मैं बात कहता हूँ सुनने के लिए कोई तैयार नहीं होता। मैंने उनसे कहा महाराज! आपका पांव छूते हैं महात्मा के नाते। आप जब राजनीति की बात करते हैं तो लोग कहते हैं कि महात्मा होकर इनको राजनीति से क्या लेना देना। भारतीय जनता के दिमाग में यह बात बैठ गई कि महात्माओं का राजनीति से कोई लेना–देना नहीं है। ये तो परमात्मा की आराधना करें और मरने के बाद का हमें रास्ता बतावें। जीते जी हमारी क्या दुर्गति हो रही है, इसके जिम्मेदार ये लोग नहीं। यही कारण आज भी चला आ रहा है। आज भी यदि कोई महात्मा राष्ट्र हित की बात करता है तो लोग कहते हैं कि अब यह महात्मा नहीं रहा; यह तो राजनीति की बात करने लगा है। क्या कहा जाए? उसका गलत फायदा 50 वर्षों तक लोगों ने उठाया। इस देश की संस्कृति और सभ्यता को ला करके किस अवस्था तक पहुंचा दिया, आप लोग जानते,हैं? हमारे राजनेता कहते हैं कि यह तो खिचड़ी संस्कृति का देश है। हमारी अपनी कोई एक संस्कृति ही नहीं है, हमारी अपनी कोई एक सभ्यता ही नहीं है, हमारा अपना कोई एक धर्म ही नहीं है।

एक बार मैंने एक लेख लिखा। वो हिन्दुस्तान टाईम्ज में छपा। उन दिनों मैं इग्लैंड में था। उसमें मैंने एक प्रश्न किया कि हम मानते हैं कि भारत में शक आए, हूण आए, कुशान आए, ततार आए और उसमें से बहुत से लोग भारत में बस गए। यह जो कहा जाता है कि लोग आते गए और हिन्दुस्तान बनता गया क्या लोगों के आने पर सलाह की गई थी कि अब हम अपने आपको हिन्दू कहें या हिन्दू संस्कृति का निर्माण करें या कोई हिन्दू संस्कृति यहां थी जिसमें ये सब आ करके विलीन होते गए? इतिहास के विद्वान् जानते हैं कि भारत एक प्राचीन सांस्कृतिक देश है। यहां की संस्कृति खिचड़ी संस्कृति नहीं है बल्कि एक विशुद्ध संस्कृति है। इसका मूलाधार भारत का प्राचीनतम ग्रन्थ है जिसे वेद कहते हैं। वेद के प्रकाश में ही अनेक प्रकार के सम्प्रदायों का जन्म हुआ है यहां पर। जिन सम्प्रदायों का आविर्भाव हुआ है वो सम्प्रदाय महापुरुषों के द्वारा किए गए सुधार के प्रयत्न के परिणाम थे जो बाद में एक सम्प्रदाय रूप में परिणत हो गए। उन्होंने कोई धर्म नहीं चलाया। जो भारतीय संस्कृति के मूल आधार हैं, वो आज भी सभी सम्प्रदायों में आपको देखने को मिलेंगे।

हम पुनर्जन्म में विश्वास करते हैं। हमारी यह मान्यता नहीं है कि यही पहला और अन्तिम जीवन है। हम ऐसा नहीं मानते कि हम सम्पाती की सन्तान हैं। हम ऐसा मानते हैं कि हम परमात्मा की सन्तान हैं। हमारे हृदय में ऐसी भावना है कि सबमें एक ही आत्मा विद्यमान है। हम सभी प्रणव के उपासक हैं। किसी भी सम्प्रदाय का मूल मन्त्र आप देखिए उसमें प्रणव पहले प्रतिष्ठित होगा। हमारे यहां वेद में बताया गया है कि –

सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति
तपाँसि सर्वाणि च यद् वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदँ संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्।

(कठ0 १/२–१५)

यह ऊँ जो है यह सभी सम्प्रदायों का मूलाधार है। बौद्ध सम्प्रदाय को देखिए उसका मूल मन्त्र ॐ मणि पदमे हुँ,' है, जैन सम्प्रदाय देखिए वहां भी सबसे पहले ऊँ है 'ऊँ नमोऽरिहन्ता नं', सिक्ख सम्प्रदाय देखिए 'एक ओंकार सतनाम कर्त्ता पुरुख', शैवों के लिए ऊँ नमो शिवाय, वैष्णवों के लिए 'ऊँ नमो नारायणाय' इस प्रकार कोई भी आप देख लीजिए ऊँ के बिना कोई मन्त्र आपको नहीं मिलेगा। तो ओंकार मूल मन्त्र है और ध्यान यह हमारी संस्कृति का मूलाधार है। ओंकार की प्रक्रिया क्या है इसको वेद में 'उद्गीथ' कहा गया है। 'उत्' माने ऊपर की तरफ 'गी' माने ले जाने वाला 'थ' माने स्थिति अर्थात् जिसके उच्चारण से आपके प्राण की ऊपर की तरफ स्थिति हो उसको उद्गीथ कहते हैं। प्रणव उपासना उद्गीथ उपासना है। यह संस्कृति वैज्ञानिक संस्कृति है। यह धर्म वैज्ञानिक धर्म है और यहां की जीवन पद्धति विशुद्ध विज्ञान के ऊपर प्रतिष्ठित जीवन पद्धति रही है लेकिन दुर्भाग्य यह रहा कि स्वतन्त्रता के पश्चात् जिसके हाथ में बागडोर आई वो अपनी संस्कृति–सभ्यता से अपरिचित था और अपने धर्म से अपरिचित था। अपने संस्कारों से अपरिचित था। उसका परिणाम 50 वर्षों में इस देश की दुर्गति का नक्शा आप देख लीजिए।

आपको एक बात और बताऊँ। भारत में एक महापुरुष हुए हैं योगी अरविंद। नाम सुना होगा आप लोगों ने अच्छी प्रकार से। उनके पिता कलकत्ता में रहते थे और अंग्रेजों के मानसिक दास थे। उनके दिमाग में यह बात थी कि भारत का जो कुछ है सब कचरा है और हमारी सन्तानों के दिमाग में शुद्ध इंग्लिश संस्कार होने चाहिए। अरविंद जब बहुत छोटे से थे तो उनको उन्होंने दार्जलिंग

भेज दिया ताकि भारत का संस्कार इसमें न आ जाए। दार्जलिंग बंगाल में ही है। वहां अंग्रेजों के नर्सरी स्कूल थे। जब थोड़े से बड़े हुए तो उनको इंग्लैंड भेज दिया गया कि न भारत में रहेगा न इसको यहां के संस्कार मिलेंगे। वहां पर अध्ययन करते रहे। जब बहुत दिन बीत गए तो एक दिन वहां ब्रिटिश म्यूजियम में चले गए। देखा वहां एक ग्रन्थ रखा हुआ था मखमली कपड़े में लपेट कर। उन्होंने पूछा यह क्या है? अकल भले बदल जाए शक्ल तो भारतीय रहती है, चाहे कहीं चले जाओ। अंग्रेज लाईब्रेरियन ने कहा कि यह हिन्दुओं की बाईबिल है। पहली बार उन्होंने सुना था कि हिन्दुओं की कोई बाईबिल भी होती है। वो तो क्रिश्चियन की बाईबिल ही जानते थे। उन्होंने कहा कि इसे देखें, भाई। उन्होंने विचार किया कि हम भी तो हिन्दू हैं। हिन्दू बाईबिल है तो इसमें क्या है? जब पुस्तक खोली तो देखा–भगवद्गीता। जब भगवद्गीता देखी तो पढ़ने लगे। उनकी रुचि हुई कि हमें इसे पढ़ना चाहिए। वो गीता का पाठ करने लगे। गीता का अध्ययन करते–करते उनके दिमाग में आया कि बाईबिल की कहानियाँ मैं पढ़ता था जिसमें न क़ोई ज्ञान है, न विज्ञान है और न कोई तत्त्व है। यह तो अद्भुत ग्रन्थ है। उन्होंने अपने हृदय में विचार किया कि यह हमें पहले समझना चाहिए। अब वहां से उनका चित्त परिवर्तित हो गया। अब वो हिन्दू दर्शन के पीछे पड़ गए। अध्ययन करने लगे। उनका बाप तो चाहता था कि शरीर से यह भारतीय है परन्तु मस्तिष्क से यह अंग्रेज हो। उस गीता के अध्ययन से ऐसा परिवर्तन आया और उन्होंने स्वयं कहा कि उस समय मुझे ध्यान में भगवान् श्रीकृष्ण का साक्षात्कार हुआ। उसके बाद उन्हें विवेकानन्द दिखाई दिए। फिर गुजरात के जो गायकवाड़ थे वे उनको प्रार्थना करके यहां ले आए। उन्हें प्रोफेसर बनाया। बाद में वो राष्ट्रीय अन्दोलन में लग गए। यह जो बम काण्ड हुआ था पार्लियामेंट में उसमें भी वो रहे, जेल में रहे,वहां से भाग कर पाण्डेचेरी चले गए। वहां उन्होंने सारा जीवन बिताया और अनुसन्धान किया। मैं आपको यह बताना चाहता था कि जो संस्कार होते हैं उनका कब किस अवस्था में जागरण हो जाए कुछ कहा नहीं जा सकता। कौन से संस्कार? जो संस्कार परम्परा से आ रहे हैं। बाहर के संस्कार नहीं आते।

आप लोगों ने सुना होगा भारत के एक महान् ऋषि पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा थे। उन्होंने एक विदेशी लड़की से विवाह कर लिया। विदेशी लड़की कहां की थी? पाताल लोक की। पाताल माने अमेरिका। अमेरिका की लड़की थी वो। सुमाली नाम का दैत्य था जिसकी वो लड़की थी, उसका नाम था कैकसी। विश्रवा से उसके दो पुत्र पैदा हुए और एक पुत्री हुई। लड़के थे रावण और कुम्भकर्ण

और पुत्री का नाम सुर्पणखा। ये तीन बच्चे हुए। रावण क्योंकि ऋषिकुमार था, बड़ा ही मेधावी तथा विद्वान् था। पिता के चरणों में रहकर के वह वेदाध्ययन करने लगा। जब वह विद्वान् बना तो मां–बाप ने कहा कि तुम तपस्या करो। ब्राह्मणों के लिए तपस्या ही धन है। उसने तपस्या की और उसे शक्ति प्राप्त हुई। जब पढ़ करके अपनी मां के पास आया तो उसकी मां ने पूछा कि स्नातकोत्तर शिक्षा में तुम्हारे गुरु ने तुम्हें क्या कहा? कहा कि गुरु ने कहा है –

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।
अतिथिदेवो भव। सत्यं वद। धर्मं चर।

(तैत्तिरीय० १/११–२,१)

यह जो स्नातकोत्तर वैदिक उपदेश है उसको दुहराया। कहा कि इसमें प्रमुख स्थान किसका है? कहा कि प्रमुख स्थान तो 'मातृ देवो भव'। कहा कि मैं कौन हूँ? तुम मेरी मां हो। मैं तुम्हें जो आज्ञा दूं वहीं तुम्हारा धर्म होगा? वो बेचारा धर्म संकट में पड़ गया। कहा कि ठीक है। विश्रवा की तीन स्त्रियां थीं। पहली स्त्री का बच्चा कुबेर, दूसरी का रावण और तीसरी की दो सन्तानें थी, एक विभीषण और उसकी बहन त्रिजटा। रावण कैकसी का बेटा था। अब कैकसी ने कहा कि मैं तुमसे कहती हूँ कि तुम्हारी दूसरी मां के बेटे कुबेर का लंका पर आधिपत्य है। लंका मेरे पिता की जागीर रही है। कुबेर को तू वहां से हटा कर बंदी बना लो और लंका का राज्य सम्भालो। रावण ने कहा कि कुबेर तो मेरा बड़ा भाई है। बड़ा भाई पिता के समान होता है। पिता के प्रति इस प्रकार का अशिष्ट व्यवहार नहीं किया जा सकता। मां ने कहा कि पिता के समान बड़ा भाई तुम्हारे आर्यों में होता है हमारे दैत्यों में नहीं होता। मैं तुम्हारी मां हूं इसलिए मैं जो कहती हूं उसका पालन करना तुम्हारा पहला धर्म है। तुम्हारे वेद की यह सीख है। आप ज़रा सोचिए मां का पुत्र के प्रति आदेश देने के लिए तो वेद की मान्यता अपनाई लेकिन बड़े भाई का आदर करने के लिए कहा कि यह हमारे दैत्यों के यहां नहीं चलता। रावण जैसे ऋषिकुमार जिसका नाम दशकन्दर दशानन था उसको राक्षस बनाने वाली कौन थी, जानते हो? उसकी मां थी। वह वृत्ति से स्वयं में राक्षस नहीं था। वह तो ऋषि कुमार था। ऋषि की दो पत्नियाँ और थीं एक राका जिसका पुत्र विभीषण था और दूसरी इन्दुमति जिसका पुत्र कुबेर था। वो दोनों तो अपने धर्म और अपने देश के प्रति निष्ठावान थीं।

अब आप सोचिए यदि विश्रवा जैसे ऋषि की पत्नी कैकसी अपने पुत्र रावण को राक्षस बना सकती है, भारतियों का दिवालीयापन तो देखो जिसमें

भारत का कोई संस्कार नहीं है, जिसको भारतीय संस्कृति और सभ्यता का बोध नहीं है, जिसके जीवन में किंचित मात्र भी कहीं वैदिक संस्कार के लिए स्थान नहीं है, ऐसे लोगों के हाथ में यदि देश की बागडोर आ जाए तो क्या गति होगी आपकी? ज़रा कल्पना तो कीजिए। यह दुर्भाग्य नया नहीं है यह पचास वर्षों से चला आ रहा है। पचास वर्षों की यह परिणति है इसलिए मैं आप लोगों से यह निवेदन कर रहा था कि आप अपने अतीत की उपलब्धियों के स्वयं रक्षक बनें। सजगता के साथ उस जीवन पद्धति को पुनः इस देश में प्रतिष्ठित करने के लिए सक्रिय हों। एक बात याद रखें कि यदि आप सोचें कि हमारे धर्म, सभ्यता और संस्कृति की रक्षा करना सरकार का काम है, यह भ्रान्ति है।

दुनिया के जितने देश हैं सभी देशों की सरकारें हैं। सभी सरकारों के पांच जिम्मेदारी पूर्ण कर्त्तव्य हैं–वहां की जनता को भोजन प्रदान करना, वस्त्र प्रदान करना, निवास प्रदान करना, बाहर से राष्ट्र की रक्षा करना तथा अन्दर से उसको न्याय दिलाना। रोटी, कपड़ा, मकान, न्याय और सुरक्षा, इन पांचों के सिवा और किसी सरकार के पास छटी योजना है क्या? मेरे को तो मिली नहीं और दुनिया के किसी देश को नहीं मिली। कोरिया में जब विश्व धर्म सम्मेलन हुआ तो भारत की तरफ से हिन्दू धर्म का प्रतिनिधित्व करने के लिए मैं गया। मैंने प्रस्ताव रखा कि दुनिया की सरकारों के पास पांच कार्यक्रम हैं–भोजन, वस्त्र, निवास, न्याय और सुरक्षा। इनकी जिम्मेदारी सरकार की है लेकिन जिन मनुष्यों के लिए इन पांचों की आवश्यकता है उन मनुष्यों में मनुष्यता के सृजन का काम कौन करेंगे? यह हमारी शिक्षा क्या मनुष्यता का सृजन करती है? नहीं। उसमें तो मनुष्यता के लिए कहीं कोई स्थान नहीं है। नर्सरी से लेकर पी.एच.डी.तक आपको कोई ऐसे संस्कारमय संकेत मिलते हैं जिसमें जरा सा भी मनुष्यता के सृजन का संकेत हो? नहीं। किसी भी सरकार के पास नहीं है। उसका परिणाम यह हुआ कि इस आधुनिक विकासवाद की प्रक्रिया ने मनुष्य को एक यन्त्र बना कर छोड़ दिया। मनुष्य मनुष्य नहीं रहा, वह केवल एक यन्त्र हो गया है। जैसे यन्त्र का एक पुर्जा खराब हो जाए तो उसे हटा कर वहां दूसरा पुर्जा रख दिया जाता है ऐसी समाज की स्थिति हो गई है। इस स्थिति में यदि मैं आप लोगों से कहूं कि योगमय जीवन जीने के लिए कृत–संकल्प हो जाइये तो आप भी कहेंगे कि क्या सोलहवीं सदी की बात बताने लगे लेकिन याद रखिए कि सत्य हमेशा सत्य रहता है।

एक बार एक जगह मैं बोल रहा था, कुछ लोगों ने कहा– महाराज! दुनिया बदल गई है और आप अभी हमें सतयुग की सीख दे रहे हो? हमने कहा

कि क्या दुनिया बदली है ज़रा हमें बताओगे? दुनिया का जो मूल ढांचा है उसमें क्या बदला? कहा कि बदला है। पहले हमारे गांव में देवियां चूल्हे में लकड़ी लगाकर फूंकनी से फूंकती तो धुएं से आंख भर जाती थी, वहां रोटियां बनाती थीं। उसके बाद में लकड़ी का युग गया तो कोयले का आ गया। अंगीठी आ गई, उसमें कोयला जलाया तो उस पर रोटी पकाने लगे। वो भी युग गया तो स्टोप आ गया मिट्टी के तेल वाला। वो युग गया तो गैस आ गई। गैसे ऐसे दबाया तो भोजन बना लिया। पहले दाल–सब्जी हंडिया में बनती थी बाद में बर्तन में और अब कुक्कर में। हां ये सब परिवर्तन तो हुए लेकिन हमारे बाप, दादे, परदादे भी मुंह से रोटी खाते थे और आप आंख से खाते हो क्या? अरे खाने का ढंग नहीं बदला पकाने की विधि बदली है। हां, इतना जरूर बदला है कि पहले हाथ–पांव मुंह धोकर खाते थे अब खड़े–खड़े खाते हैं। इतना अन्तर है न? खाते तो मुंह से हो, हजम तो वैसे ही होता है यानी कहां बदलाव आया है? उपकरणों में बदलाव आया है न कि आपके जीवन में बदलाव आया है। कपड़े आप पहले धोती–कुर्त्ता पहनते थे अब पैंट–कोट पहनते हो। इससे बदलाव आ गया क्या? क्या बदलाव आया है? शक्ल आपकी वही है। आप अपने बाप, दादे से शक्ल मिलाइये, देखो मिलती है कि नहीं मिलती? बदलाव कहां है? लोग कहते हैं कि जनरेशन गैप है। कहां गैप पड़ा? अरे, बाप के बाद लड़का हुआ, लड़के के बाद तुम्हारा लड़का हो गया, गैप कहां गया बीच में? गैप तो तब हो यदि बीच में एक जनरेशन न होती। जिस घर में एक वृद्ध बैठा हुआ है उसी घर में एक छोटा सा बच्चा खेल रहा है। गैप कहां है? गैप आया अपने दिमाग में। यह जनरेशन गैप तो पश्चिम सभ्यता की भाषा है। परम्परा तो इसी रूप से चली आ रही है। कब से चली आ रही है, इसका कुछ पता है? जब से सृष्टि चली तब से प्रत्येक प्रक्रिया तो वही है जो लाखों वर्षों से चल रही थी। मैथुनी सृष्टि का क्रम वही चला आ रहा है। आज भी नौ महीने बाद ही बच्चा पैदा हो रहा है। आज भी बच्चा पैदा होने के बाद चलता–फिरता नहीं, दौड़ता नहीं, पड़ा रहता है। आज भी उसको फाहे से दूध पिलाया जाता है। यह ठीक है दूध में चाय डाल दी जाती है, क्यों? हजम नहीं होता क्योंकि मां ने उस अवस्था में जब कि बच्चे का शरीर बन रहा था दूध पिया ही नहीं। चाय पीकर बच्चे का शरीर बना है। अब जिससे उसका शरीर बना है उसी की मांग करेगा वह।

मेरा कहने का अभिप्राय कि ये सारी भ्रान्तिपूर्ण धारणाएँ हैं इसलिए योगमय जीवन अतीत में था, आज भी है और आगे भी उसी रूप से मूल्यवान

बना रहेगा, उसके मूल्य को कोई बदल नहीं सकता। हमारे यहां योग की प्रक्रियाओं में दो प्रकार की विधियां रही हैं– एक को भक्ति मार्ग कहते हैं दूसरे को ज्ञान मार्ग कहते हैं। एक हृदय प्रधान है दूसरा बुद्धि प्रधान। बुद्धि प्रधान जो प्रक्रिया रही है उसको अंग्रेजी ascending process अर्थात् उत्थान की प्रक्रिया और भक्ति मार्ग में descending process अवतरण की प्रक्रिया कहते हैं। जिस विधा की बात मैं आप लोगों को समझा रहा था वो भगवान् के शब्दों में ascending process है यानी उत्थान की प्रक्रिया है। भगवान् ने गीता के छटे अध्याय के तीसरे श्लोक में यह बात कही है–

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते।

इसका शाब्दिक अर्थ होता है कि योग के ऊपर जो चढ़ना चाहता है, अपनी चेतना को जो मूलाधार से उठा कर ब्रह्मचक्र तक लाना चाहता है, उसके लिए कर्म कारण है। कर्म का अवलम्बन ले करके ही वह ऊपर चढ़ सकता है। जब वह ऊपर चढ़ता है तो –

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते।

वहां पर चित्त की स्थिरता या शान्त अवस्था जिसको शम कहते हैं, वह उसमें कारण होती है। ये दो प्रक्रियाएं हैं। भगवान् उत्थान की प्रक्रिया बता रहे हैं क्योंकि योगारूढ़ होने की बात तो ऊपर चढ़ने की बात है। यहां अवतरण की बात नहीं है। अवतरण की बात भगवान् ने सातवें अध्याय में की है। वो भी प्रक्रिया है गीता में जिसमें भगवान् ने बताया है –

वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः।

(गीता ७/१९)

ऐसा महात्मा जो अनुभव कर रहा है कि 'वासुदेवः सर्वमिति' वो परमात्म सत्ता को इस स्थूल स्तर पर ला करके देख रहा है। 'सर्वं वासुदेवं इति' ऐसा अनुभव कर रहा है। भगवान् ने कहा 'स महात्मा सुदुर्लभः' ऐसा महात्मा तो सूदुर्लभ है लेकिन ऐसा महात्मा बनना कोई सरल नहीं है। यह भी बड़ा कठिन है। यह जो आरोहरण का मार्ग है यह भी बहुत महान् है। आगे भगवान् ने बताया है–

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।

(गीता ६/५)

पांचवें श्लोक में भगवान् ने बताया उद्धरेत माने उत् हरेत्, –उत् माने ऊपर, हरेत माने खींचना। 'उद्धरेदात्मनात्मानम्' अपनी बुद्धि के द्वारा अपनी चेतना को आप ऊपर उठावें। उसी को कहते हैं उद्धार। जो आप लोग कहते हैं–

महाराज! मेरा उद्धार कर दो। उद्धार माने मेरे को ऊपर उठा दो। यह उत् हरेत् शब्द से उद्धार शब्द बना है। अब प्रश्न होता है कि जो योगारूढ़ हो गए हैं अर्थात् जो योग से ऊपर पहुंच गए हैं, जिनकी चेतना ब्रह्मचक्र में अवस्थित हो गई है और जो समाधि अवस्था को प्राप्त कर लिए हैं, क्या वो हमेशा वहीं रहते हैं? नहीं,नहीं, वो हमेशा वहां कैसे रह सकते हैं। अवतार की अवस्था में आया हुआ भगवान् भी हमेशा वहां नहीं रहता।

महाभारत के अन्त में जब भगवान् कुन्ती के पास गए, कहा कि बुआ अब मैंने जो प्रतिज्ञा की थी तुम्हारे पुत्र को सम्राट बनाने की वो तो पूरी कर दी है, अब मैं द्वारिका जाना चाहता हूँ। कुन्ती रोने लगी। कहने लगी–नहीं कृष्ण! हमारे लिए तो वनवास की अवस्था अच्छी थी। यह राज्य अच्छा नहीं। भगवान् ने पूछा–बुआ! क्यों? तुम्हें वह अवस्था क्यों अच्छी लगती है, यह क्यों अच्छी नहीं लगती? कुन्ती ने कहा कि जिस समय हमारे पुत्र वन में थे उस समय तुम सदा उनके साथ रहे, अब उनको राज दिला दिया तो तुम जा रहे हो? वही अवस्था अच्छी है जिसमें तुम सदैव साथ रहो। वो स्थिति हमें नहीं चाहिए जिसमें तुम दूर हो जाओ। भगवान् मुस्कराए और कहा कि यह सम्भव नहीं। अर्जुन आया प्रभु के चरणों में प्रणाम किया, प्रभु से प्रार्थना की कि प्रभो! मेरी एक और विनती है। कहिए! कहा कि जो युद्ध के समय आपने मुझे उपदेश दिया था वह एक बार फिर दुहरा दीजिए। भगवान् ने मुस्करा कर कहा – पगले! उस अवस्था में योगस्थ हो करके मैंने तुम्हें वह उपदेश दिया था। इस समय मैं उस अवस्था में नहीं हूँ कि पुनः उसे दुहराऊँ। उस अवस्था में जिस समय तुम धर्म के विषय में किं कर्त्तव्य–विमूढ़ हो गए थे उस समय तुमने प्रश्न किया था और आज तुम उस अवस्था में नहीं हो कि उस प्रकार के संदेश को तुम ग्रहण कर सको। न तुम उस अवस्था में हो न हम उस अवस्था में हैं इसलिए वो बात दुहराई नहीं जा सकती। फिर भी अर्जुन के आग्रह करने पर भगवान् ने वहां अपना संदेश दिया जिसको महाभारत में अणु गीता के नाम से जाना जाता है।

मेरे कहने का अभिप्राय कि जो योगी एक बार समाधि की उच्चतम अवस्था में पहुंच जाता है वह हमेशा योगारुढ़ ही नहीं रहता, व्युत्थान की अवस्था में भी आता है। इसीलिए दूसरे अध्याय में अर्जुन का प्रश्न है –

स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थ्रस्य केशव।
स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्।।

(गीता २/५४)

हे केशव! जो समाधिस्थ प्रज्ञा है, उसका क्या लक्षण है? यह तो प्रश्न है समाधि अवस्था में रहने वाले का लेकिन जब समाधि से वह व्युत्थान अवस्था में आता है तब के लिए पूछ रहा है –

स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत व्रजेत किम्।

जब वह व्युत्थान अवस्था में आता है तो कैसे बोलता है? कैसे बैठता है? कैसे चलता है यानी उसका क्रिया–कलाप क्या होता है? कोई भी योगी हमेशा उस अवस्था में नहीं रहता। विद्वान् योगियों की राय है कि यदि वह उस अवस्था में रहे तो 21 दिन बाद रामनाम सत् हो जाएगा। शरीर नहीं रहेगा। हमारे अभ्यास काल के साथी यहां बैठे हैं, जानते हैं। कुछ दिनों तक जब हम भोजन करने बैठते थे तो हाथ में ग्रास लिया, वहीं का वहीं रह जाता था और आंख बंद हो जाती थी, पता ही नहीं चलता था। होश नहीं होती थी। ग्रास घंटों लेकर बैठे रहते थे। उस अवस्था में खाया नहीं जाता, पिया नहीं जाता तथा कोई क्रिया नहीं होती शरीर की। धीरे–धीरे उस अवस्था से जब आप व्युत्थान की स्थिति में आएंगे तो खाना भी पड़ेगा, पीना भी पड़ेगा, बोलना भी पड़ेगा, चलना भी पड़ेगा, काम भी करना पड़ेगा लेकिन किस प्रकार का काम करेंगे आप? कैसे बोलेंगे? कैसे चलेंगे? कैसे बैठेंगे? यानी आपके जीवन का क्रिया–कलाप क्या होगा? उसी के उत्तर में गीता में स्थित प्रज्ञ दर्शन की व्याख्या है। मैंने अपने धर्म विज्ञान भाष्य में इसको विस्तार के साथ व्यक्त किया है। मैं आप लोगों को यह बता रहा था कि जो योगारूढ़ हो गया है उस अवस्था में शम ही कारण होता है। शम माने चित्त का प्रवाह शान्त हो गया है। अब वहां किसी प्रकार की गति नहीं है। चित्त बिल्कुल शान्त है और प्राण की क्रियायें शान्त हो गई हैं। समाधि अवस्था में योगी बैठा हुआ है लेकिन समाधि से व्युत्थान में तो आयेगा? समाधि में तो हमेशा नहीं रहेगा। समाधि से जब व्युत्थान में आयेगा तब उसकी दिनचर्या कैसी होगी? व्युत्थान में रहने वाले योगी को हम कैसे मानें, कैसे जानें कि यह योगारूढ़ है? योगारूढ़ अवस्था में तो देखा ही जाएगा कि वह योगारूढ़ है लेकिन व्युत्थान की अवस्था में आने वाला योगी जो है उसके कौन से ऐसे लक्षण हैं जिससे पता चले कि यह योगारूढ़ हो चुका है, यह योग की उच्चावस्था में अवस्थित हो चुका है? भगवान् ने वहां उत्तर दिया कि जिस अवस्था में योगी इन्द्रियों के अर्थों में और कर्मों में अनुसज्जित नहीं होता, आसक्त नहीं होता और जिस अवस्था में कामना से युक्त उसके सारे संकल्प समाप्त हो जाते हैं उस अवस्था में योगी योगारूढ़ हो चुका है, ऐसा समझना चाहिए।

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते।।

(गीता ६/४)

जिस अवस्था में योगी इन्द्रियों के अर्थों में यानी विषयों में आसक्त नहीं होता। रोटी नहीं खाता क्या? खाता है, पीता है, बोलता है, डोलता है तथा सारा काम करता है लेकिन वह इन्द्रियों के अर्थों में आसक्त नहीं होता, उसके संग्रह में प्रवृत्त नहीं होता इसलिए योगारूढ़ कहा जाता है। एक दिन मैंने बताया था कि जिस पदार्थ से आपको सुख की अनुभूति होती है उसमें आपकी आसक्ति हो जाती है। जिसमें आसक्ति होती है उसकें संग्रह की प्रवृत्ति हो जाती है। आज तो यह पदार्थ है हमें सुख मिला ,यदि यह पदार्थ कल नहीं मिलेगा तो? फिर मैं सुखी नहीं होऊँगा इसलिए जो बाकी बचा है वह कल के लिए रख लो। यही होता है न? आज जिससे सुख मिला है उसका शेष भाग कल के लिए बचाकर रखने की जो प्रवृत्ति है, उसका कारण क्या है? उसके द्वारा मिले हुए सुख की आसक्ति। जिस कर्म को करने में आज उसे प्रसन्नता हुई है कल भी उसी प्रकार का कर्म करेगा जिससे उसे सुख मिले इसलिए वह दोबारा उसी प्रकार के कर्मों का अनुष्ठान करता है। कहा, योगी यह भी नहीं करता। जो योगारूढ़ हो चुका है वह जानता है कि पदार्थ से सुख उपलब्ध होने वाला नहीं है।

अच्छा आप यह बताइये कि स्वाद आपको भोजन से मिलता है या स्वाद भूख में है? क्या कहेंगे आप? भूख में। भोजन में स्वाद नहीं। जो भोजन आपको बहुत प्रिय हो आपको खाने की रुचि हो, भूख भी लगी हुई हो परन्तु वह पदार्थ आपको न मिले और आपको पदार्थ वो मिले जिसे आप खाना नहीं चाहते तो भूख के नाते आप उसी पदार्थ को ग्रहण करेंगे। पेट भर जाने पर आपको वो पदार्थ मिल जाए जो आपको बहुत प्रिय है तो आप क्या कहेंगे? अब तो पेट में जगह नहीं है। अरे, खा लो बाद में आपको चूर्ण की गोली दे देंगे, परन्तु आप उसे खाने के लिए तत्पर नहीं होते। मेरे कहने का अभिप्राय कि स्वाद भूख में है भोजन में नहीं है, पदार्थ में नहीं है। भूख पदार्थ से लगती है या अन्दर से लगती है? सुख का आधार, स्वाद का आधार अन्दर हुआ, बाहर तो नहीं। जब योगी को पता चल गया कि सम्पूर्ण सुखों का आधार अपने अन्दर है तो बाहर क्यों आसक्त होगा? तुलसीदास जी ने विनय–पत्रिका में एक बहुत सुन्दर पद लिखा जो मुझे बहुत प्रिय है। उसमें कहते हैं कि जैसे एक भूखा कुत्ता सूखी हड्डी को अपने मुंह में पकड़ता है और उसको चबाता है। चबाते समय उसके तालु में जख्म हो जाता

है और उससे खून निकलने लगता है। वह अज्ञानतावश सोचता है कि यह खून उसके तालु से नहीं बल्कि हड्डी से आ रहा है और अपने तालु से निकले खून को चाट करके प्रसन्न होता है। तुलसीदास जी लिखते हैं –

अस्थि पुरातन छुधित स्वान अति ज्यौं भरि भुख पकरै।
निज तालूगत रुधिर पान करि, मन संतोष धरै।

(वि0प0 ९२/४)

कहा कि यही गति मनुष्य की है। जो स्वाद कुत्ते को आ रहा है वह हड्डी से नहीं बल्कि तालुगत खून से आ रहा है। हड्डी तो माध्यम बना हुआ है। इसी रूप से जिसमें आप बहुत सुख का अनुभव करते हैं ज़रा कल्पना कीजिए वो सुख कहां से आता है? उस माध्यम से क्या? न, न। अपने शरीर के जीवन तत्त्व को क्षय करने में आप अपने आपको सुखी मान लेते हैं। मेरे कहने का अभिप्राय कि योगी इस रहस्य को जान जाता है कि सुख का स्त्रोत अन्दर है बाहर नहीं है इसलिए बाह्य पदार्थों से वह सुखी होने की कल्पना का त्याग कर देता है। जब योगी इन्द्रियों के अर्थ में और अर्थ को ग्रहण करने वाले कर्म में आसक्त नहीं होता तब–

सर्व संकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते।

(गीता ६/४)

वह सम्पूर्ण संकल्पों का संन्यास करने वाला योगी योगारूढ़ कहा जाता है। यह उसका लक्षण है।

हमारे यहां यह बताया जाता है कि कैसे समझा जाए कि तुम्हारा जीवन पूर्ण हो गया है? उसका लक्षण है–संशय रहित ज्ञान, वासना रहित प्रेम और कामना रहित कर्म। ये पूर्ण पुरुष के लक्षण हैं। यह थर्मामीटर बना करके अपने को मापते रहना चाहिए। इससे एक दिन आप उस अवस्था में पहुंच जायेंगे। यह व्यवहारिक जीवन जीने की प्रक्रिया है। मै आपको काल्पनिक जीवन जीने की बात नहीं बता रहा। आप सभी ऐसा जीवन जी सकते हैं। इस देश की गरिमा में यही मूल हेतु रहा है जो मैंने आपको बताया है।

यदि आप लोग अपने अतीत की उपलब्धियों को सुरक्षित रखना चाहते हैं, संजोना चाहते हैं और विश्व मंच पर इसको प्रकाशित करना चाहते हैं तो उसके लिए आपको तत्पर होना होगा। गीता का यह अमूल्य ज्ञान है। मेरी यह राय है कि जो बात भगवान् व्यासदेव ने लिखी है कि –

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।

या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता।।

(गीता महात्म्यम् ४)

इसमें ज़रा भी संदेह नहीं है। यदि गीता को आप एक बार समग्र रूप से समझ लेंगे तो आपको अन्य ग्रन्थों को पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं होगी। आपके पूर्ण जीवन का पूर्ण ज्ञान उसमें निहित है यदि एक बार आप उसे समझ लें तो! लेकिन समझना ही तो कठिन है। पांच दिनों में दस व्याख्यानों में मैंने तीन श्लोकों की व्याख्या आपको सुनाई। आज चौथे श्लोक की बात कही है। इसकी व्याख्या थोड़ी सी रह गई है जो कल करूँगा।

हरि ऊँ तत्सत्

उदयपुर
22.03.1998
प्रातः

११

परावर रूप में उपस्थित मेरी प्रिय आत्माओ !

करुणानिधान भगवान् की करुणा आप सभी के लिए सदैव कल्याण का सृजन करती रहे, यह मेरी आन्तरिक शुभ कामना। आज आपको साधना सम्बन्धी कुछ बातें–बताऊँगा जिससे आप अपने जीवन को योगमय बना कर कृत्कृत्यता का अनुभव करें।

ध्यान में बैठने की स्थिति इस प्रकार होनी चाहिए, बाँया पांव नीचे और दाहिना उसके ऊपर होना चाहिए। पांव की दोनों एडियां नाभि के बिल्कुल नीचे सीधी लाईन में जननेन्द्रिय के मूल में होनी चाहिए। दोनों घुटनें जमीन पर लगे हुए हों। कमर सीधी रखनी चाहिए। यदि आप झुक जाते हैं तो प्राण की गति में व्यवधान उपस्थित होता है। जब भी ध्यान में बैठें तो कमर सीधी होनी चाहिए जिससे ज्ञानवाह और रक्तवाह नाड़ी दोनों अपने–अपने स्थान पर उचित रूप से कार्य कर सकें। आपके चेतना के संचार का मूल स्त्रोत तो ब्रह्मचक्र है जिसे चिदाकाश भी कहते हैं। जो पढ़े लिखे हैं उनको पता है कि brain पहले तो दो भागों में विभाजित है–upper brain और lower brain फिर पहला भाग दो भागों में विभाजित है–दायां और बायां। ईश्वर की ऐसी विचित्र व्यवस्था है कि दिमाग का दायां भाग बांयी तरफ को कंट्रोल करता है और बायां दायीं तरफ को। हमारे यहाँ ईडा

और पिंगला, इन दो नाड़ियों का वर्णन है और बीच में सुषुम्ना है। वैसे तो शरीर में ७२ करोड़ नाड़ियां बताई गई हैं। उनमें से ७२ लाख, फ़िर ७२ हज़ार, फिर ७२ सौ, फिर ७२ और फिर ७२ में से १४ नाड़ियां मुख्य हैं। १४ नाड़ियां जो हैं वे दो कान में, दो आंख में, दो नाक में, एक जिह्वा मूल में, दो नीचे के यन्त्रों में और एक हृदय को संचालित करने वाली नाड़ियां हैं। इस प्रकार शरीर के मुख्य अवयवों को संचालित करने वाली ये नाड़ियां हैं। ये नाडियां जिनकी मैं चर्चा कर रहा हूँ ये सब ज्ञानवाह नाड़ियां हैं। आपका शरीर ज्ञानवाह नाड़ियों का ही जाल है, ऐसा समझ लो।

<u>प्राणायाम की विधि</u> :– प्राणायाम की विशेषता यह है कि जब आप दाहिने नाक से श्वास लेते हैं तो बांया भाग पुष्ट होता है और जब बांए नाक से श्वास लेते हैं तो दायां भाग पुष्ट होता है। यह नाड़ी की गति दाहिने से ऐसे बांय आई है और फिर बांय से ऐसे दांय गई है। पहले नाड़ी की गति का वर्णन जब शास्त्रों में ऐसा मिलता था तो लोग समझते थे कि ऐसे उल्टा कैसे हो गया? जब पश्चिम में विद्वानों ने दिमाग का अध्ययन किया और यह तथ्य उद्घाटित किया तो लोगों को यह बात समझ में आ गई कि बात ठीक है। दिमाग के दोनों भागों के मध्य में पीनियल ग्लैंड है। उसके नीचे पिच्यूटरी ग्लैंड है। पीनियल ग्लैंड जहाँ है उसके बिल्कुल नीचे बहुत छोटा सा स्पेस है और उस स्पेस का ही नाम चिदाकाश है। वही आत्मा का मुख्य स्थान है। उसको वेद में हिरण्यमय कोश कह दिया है –

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्मयः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।

(अथर्ववेद १०–२–३३/३१)

उसी हिरण्यमय कोष में इस चेतन का आविर्भाव हो गया और वही बीज है आपके इस सारे शरीर का, जीवन का। जब आप ध्यान में बैठो तो अपने आपको उस स्थान पर ले जाने का प्रयत्न करो। आपकी रीड़ की हड्डी यदि सीधा रहेगी तो इडा, पिंगला और सुषुम्ना, ये तीनों नाड़ियां समुचित रूप से अपना–अपना काम करेंगी। ध्यान की अवस्था में यदि आपका दोनों स्वर चलता हो तो आप समझ लेना कि इस समय सुषुम्ना चल रही है अन्यथा कभी इडा चलती है और कभी पिंगला चलती है। ध्यान के लिए सुषुम्ना का चलना आवश्यक है। सुषुम्ना को अग्नि नाड़ी कहते हैं, इडा को सूर्य और पिंगला को चन्द्र नाड़ी कहते हैं। ध्यान में जब आप बैठें तो आपकी सुषुम्ना नाड़ी चलनी चाहिए। आपकी दोनों नासिकाओं में से पूरा श्वास आनां जाना चाहिए। यह होगा कैसे ? जब आप प्राणायाम करेंगे

तो! भस्त्रिका प्राणायाम में विशेषता यह है कि आपके शरीर में जितने प्रसुप्त अवयव हैं सबको वह गति प्रदान कर देता है; सब जागृत हो जाते हैं। उनमें से शिथिलता समाप्त हो जाती है और गति आ जाती है। धौंकनी का नाम भस्त्रा है। शिथिलता को शान्त करके गति उत्पन्न करना यह भस्त्रिका प्राणायाम का महत्त्वपूर्ण स्वरूप है। महाराज मनु ने तो यहाँ तक लिखा है कि जैसे सुनार धौंकनी करता है तो थोड़ी सी अग्नि में तेज आ जाता है। उसमें सोने जैसी धातु को डाल दो तो वह गल जाती है, लोहा डाल दो तो वो भी गल जाता है। जैसे उस धौंकनी के द्वारा प्रकट हुई अग्नि से धातु शुद्ध हो जाती है ऐसे भस्त्रिका प्राणायाम के द्वारा यह आपका चित्त निर्मल हो जाता है। चित्त धातु है। धातु माने धारण करने वाला। 'धातु प्रसादा' जिसको वेद में कहा है। किसको धारण करता है ? चेतन को। यह एक तरफ चेतन की सत्ता को और दूसरी तरफ पूरे शरीर को धारण कर रहा है। सांख्य की भाषा में चित्त को बुद्धि कहते हैं। प्राणायाम के द्वारा आपका चित्त शुद्ध होता है। महर्षि पतंजलि ने कहा है –

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य।

(यो0 सू0 १/३४)

कह करके उस प्राणायाम की महिमा गाई है। उसमें बताया –

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च।

(यो0सू0 १/२९)

फिर उससे क्या होता है ? प्रत्यक् चेतन में प्रवेश होता है। यह जो प्रक्रिया है प्राणायाम की यह प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी है। चाहे आप बूढ़े हैं चाहे जवान हैं या बच्चे हैं प्राणायाम करते हैं तो उससे आपके चित्त, बुद्धि, कारणं, सूक्ष्म तथा स्थूल शरीर पर इसका प्रभाव पड़ता है। इससे आप अधिक से अधिक आक्सीज़न ले सकते हैं और कार्बनडायक्साईड छोड़ते हैं। जितना आपके शरीर में आक्सीज़न अधिक होगा उतना ही आपका रक्त पतला होगा। Red carpsels उसमें अधिक होंगे तो आपको रक्त के दौरे में कोई दिक्कत नहीं होगी। जब आप चिंता करने लगते हैं तो आपके श्वास की प्रक्रिया में व्यवधान आ जाता है, उससे आप पूरा श्वास नहीं ले पाते। फेफड़ा आपका पूरा श्वास नहीं ले पाता, धीरे–धीरे सिकुड़ने लगता है। आपकी ऐसी गति हो जाती है कि आपका श्वास छोटा हो जाता है। उस अवस्था में आपके शरीर में white carpsels अधिक वृद्धि को प्राप्त हो जाते हैं। आक्सीज़न पूरा न मिलने के कारण ये आपके शरीर में कई प्रकार के रोगों को पैदा कर देते हैं। आपका रक्त गाढा हो जाता है। आपके हृदय को

पंप करने में मेहनत करनी पड़ती है। उसी को ब्लड प्रैशर कहते हैं। आजकल तो डाक्टर भी बताते हैं कि लम्बी श्वास लिया करो। प्राणायाम तो कह नही सकते क्योंकि उन्हें कहते हुए शर्म आती है। प्राणायाम यदि कह देंगे तो इंडियन यौगिक प्रक्रिया हो जायेगी। वो कहते हैं कि लम्बी श्वास लिया करो। अरे भले आदमी! उनको ठीक से बताओ कि प्राणायाम किया करो। आक्सीज़न अधिक से अधिक लो कार्बनडायक्साईड अधिक से अधिक बाहर फेंको। भस्त्रिका में क्या होता है? पूर्ण रूप से आक्सीज़न अन्दर भरते रहते हैं और कार्बनडायक्साईड बाहर फेंकते रहते हैं। इसी को भगवान् ने गीता के चौथे अध्याय में बताया –

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे।

(गीता ४/२९)

श्वास को इतनी जोर से खींचो कि वह अपान में चला जाए। अपान माने नाभि के नीचे और फिर अपान को इतनी जोर से खींचो कि नीचे की जो ऊर्जा है वह बाहर चली जाए यानी कार्बनडाइक्साईड बाहर चला जाए और आपका शरीर आक्सीज़न से भर जाए। बार–बार ऐसे करते रहोगे तो थोड़ी देर बाद ऐसा लगेगा कि सारा शरीर हमारा आक्सीजन से भर गया है। ये साधना की प्रक्रियायें हैं। प्राणायाम प्रत्येक व्यक्ति के लिए बहुत आवश्यक है। उसकी सरल सी विधि मैं आपको बता रहा हूँ।

खूब लम्बी श्वास लीजिए। पहले अपान वायु को बाहर फेंक दीजिए और फिर प्राण को खूब खींचिए अन्दर ले जाइये, रोकिए नहीं। रोकेंगे तो गड़बड़ हो जाएगा। पहले बाहर फेंकिए फिर अन्दर लीजिए। इसको कुछ देर तक करते रहिए। थोड़ी देर बाद बाहर निकाल कर बाहर रोकिए क्योंकि जब आप बाहर फेंकते हैं तो आपकी जो अपान वायु या कार्बनडायक्साईड बाहर गई है यदि तुरन्त आप श्वास लेते हैं तो उसी की फिर लौट कर अन्दर आने की सम्भावना है। बाहर फेंक कर बाहर थोड़ी देर रोक दीजिए। फिर आक्सीज़न से अपने आप को भरिए। याद रखिए प्राणायाम करते समय आपका चित्त एकाग्र होना चाहिए और यह महसूस होना चाहिए कि मैं शरीरगत दूषित वायु को बाहर फेंक रहा हूँ और अनन्त सत्ता से दिव्य ऊर्जा को अन्दर ग्रहण कर रहा हूँ। जब तक आपका चित्त शान्त न हो, एकाग्र न हो तब तक यह क्रिया करते रहें, नहीं तो गड़बड़ हो जाती है। योगशास्त्र में तो यह बताया गया है कि प्राणायाम तो सिंह को पकड़ने जैसा है। ज़रा सी असावधानी हुई तो जैसे सिंह झपटा मारकर खत्म कर देता है, वही गति प्राणायाम की हैं। यह उपयोगी भी है और खतरनाक भी। भस्त्रिका

प्राणायाम में कोई हानि नहीं है। इसको आप ध्यान में बैठने से पूर्व सावधानी से कीजिए। उसके पश्चात श्वास जब अन्दर भरिए तो अन्दर भर करके थोड़ी देर रोकिए। नाक पकड़ करके मत रोकिए। जितनी देर आप अन्दर रोक सकते हैं आराम से रोकिए। कभी–कभी जो नाक को पकड़ कर रोकते हैं वो ज्यादा रोकने के प्रलोभन से नाक को दबाए रखते हैं। अन्दर की नाड़िया बड़ी कोमल हैं। आपके प्राण का जब जोर पड़ता है तो उनमें दोष आ जाता है, वे फट भी जाती हैं। हानि भी हो जाती है फिर कई प्रकार के रोग पैदा हो जाते हैं। फिर कहते हैं कि किसी ने प्राणायाम तो बताया था हानि हो गई, लाभ नहीं हुआ। लाभ कैसे होता? जैसे करना चाहिए था वैसे किया नहीं इसीलिए बताया गया कि यौगिक क्रियाओं के लिए पहले किसी गुरु के पास जाओ और उन के पास बैठ करके इसे समझो।

प्राचीन काल से ही हमारे यहाँ ऐसी प्रक्रिया रही है कि प्रत्येक बच्चा पांच वर्ष का जब होता था तो वह घर में नहीं रहता था। वो गुरुकुल में चला जाता था। गुरुकुल में जाकर के सारी विद्याएं सीखता था। सारी विद्याएं सीख करके फिर वो गृहस्थाश्रम में आता था, आनन्दमय जीवन जीता था। उसके पश्चात् कुछ काल के बाद वह वाणप्रस्थी जीवन में पहुँच जाता था। जीवन का एक भाग केवल संसार में उसका रहता था जिसको गृहस्थ कहते हैं। १०० वर्षों में से समझ लो २५ वर्ष तो बीत गये गुरुकुल में, फिर २५ वर्ष गृहस्थ में रहा। ५० वर्ष की आयु में वह वाणप्रस्थ में चला गया। ७५ वर्ष के बाद उसने सब कुछ छोड़ दिया। अब केवल आत्म चिंतन में लग गया। शास्त्रों में एक श्लोक बताया गया है–**प्रथमे नार्जितः विद्या**–आयु के पहले भाग में यदि आपने विद्या न अर्जित की– **द्वितीय नार्जितं धनम्**–और दूसरे भाग में धन का अर्जन नहीं किया–**तृतीय नार्जितं धर्मम्**–तीसरे भाग में यदि धर्म का अर्जन नहीं किया तो– **चतुर्थे किं करिष्यसि**– तो चौथी अवस्था में तुम क्या करोगे? मरने के किनारे हुआ तब होश आई कि हमारा मन नहीं लगता भगवान् में। भगवान् में कहां मन लगेगा? ७५ साल तक जिसमें मन लगाए रहे हो उसमें मन लगेगा या आंख मूंद करके बैठे रहोगे तो परमात्मा में मन लग जायेगा तुम्हारा?

यह भारतीय जीवन में जो आश्रम व्यवस्था थी उसका यह महत्त्व था। ये जो आज परिवारों में इतने झगड़े हो रहे हैं उसमें भी यही एक कारण है। यदि पिता ५० वर्ष की आयु में पहुंच गया तो उसे वाणप्रस्थ ले लेना चाहिए। हमारे यहां ऐसी व्यवस्था दी गई कि जब लड़के की बहू घर में आ जाए तो बाप को अब घर

में जाकर रोटी खाने की जरूरत नहीं, वह बाहर बैठ करके वहीं भोजन करे। जब लड़के के लड़का हो जाए तब वह धीरे से अलग हो जाए। अलग कहां हो जाए? अपने कारोबार से क्योंकि अब लड़का लड़का नहीं, अब लड़का बाप है। बाप का अभिप्राय होता है कि वह जिम्मेदार हो गया है लेकिन यहाँ तो मरते–मरते चाबी अपने पास दबाए रखते हैं। लड़का सोचता है कि हे भगवान्! कब यह बूढ़ा मरे और चाबी अपने पास आए। यही घर में कलह का कारण बनता है। मैं इसलिए आप लोगों को बता रहा था कि हमारे यहाँ अध्यात्मवाद में जीवन व्यवस्था बहुत सुन्दर रही है। ये चार जो आश्रम बनाये गए हैं इसके लिए बड़ी सुन्दर व्यवस्था थी। आज भी विदेशों में लोग यही चाहते हैं कि यदि ऐसा हो जाए तो बहुत अच्छा है। आज भारत में मानसिक व बौद्धिक अनेक प्रकार के रोग इसी कारण से हो रहे हैं। आप लोग आसन में बैठें प्राणायाम करें। इसमें ज्यादा समय नहीं लगेगा।

सूर्य उदय होने से पहले जग जाना चाहिए। यदि आप पांच बजे उठते हैं तब भी आपके पास बहुत समय होता है। साढ़े पांच या छः बजे उठें तब भी आपके पास बहुत समय होता है। शौच आदि से निवृत्त होकर बैठ जाइये। एक घण्टे कम से कम सवेरे दीजिए आप। इसके लिए और कुछ नहीं करना। आप आसन लम्बे चौड़े नहीं कर सकते तो शान्ति से आसन पर बैठिए। जैसे मैंने बताया बायां पांव नीचे रखिए दाहिना उसके ऊपर रखिए। कमर को सीधा रखिए, बैठ जाइये प्रशान्त होकर। बैठ कर भस्त्रिका प्राणायाम कीजिए।

<u>ध्यान प्रक्रिया</u> :– ऐसा चिन्तन करें कि अनन्त आकाश में पृथ्वी है, पृथ्वी पर अपना शरीर है। चारों तरफ अनन्त आकाश ऊर्जा से भरा हुआ है और इसी ऊर्जा को हम अपने अन्दर ले रहे हैं और अपने अन्दर की दूषित वायु को बाहर फैंक रहे हैं। ऐसी भावना करते हुए आंख बन्द करके अब प्राणायाम की प्रक्रिया आप शुरु कर दीजिए। आप जितनी देर प्राणायाम कर सकते हैं प्राणायाम कीजिए। यह आपकी शक्ति पर निर्भर करता है। जब तक आपको यह न लगे कि मैं थक गया हूँ तब तक आप उसे करते रहिए। उससे क्या होगा? आप अपने आपको energise करते हैं यानी अपने आपको आक्सीजन से भरते हैं और कार्बनडायक्साईड बाहर फैंकते हैं। आप बहुत अच्छा काम कर रहे हैं। जो कुछ औषधि नहीं कर सकती, कोई डाक्टर नहीं कर सकता, वह प्राणायाम करेगा। इस प्रकार प्राणायाम के पश्चात जब आपको ऐसा लगे कि हमें शान्त हो जाना चाहिए तो नेत्र बन्द करके बैठ जाइये। गुरु द्वारा ग्रहण किए हुए मन्त्र का जाप कीजिए। मन्त्र के साथ ध्यान क्या करना है यह आपके ऊपर निर्भर करता है।

अपने इष्ट का ध्यान कीजिए। योग मार्ग में ये तीन चीजें आवश्यक हैं– इष्ट, मन्त्र और गुरु। इनके द्वारा तुम साधना में आगे बढ़ सकते हो। इस प्रक्रिया से जब आप साधना में आगे बढ़ना चाहेंगे तो धीरे–धीरे आपका आत्मोथान होगा। उस स्थिति में आप कुछ दिन तक करके देख लें। जैसे–जैसे आपकी गति स्थिर होगी वैसे–वैसे आपके जीवन में ये जो तीन बातें कल बताई थीं आनी प्रारम्भ हो जायेंगी। प्रभु कहते हैं –

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते।।

(गीता ६/४)

इससे धीरे–धीरे आपकी इन्द्रियों के अर्थ से अरुचि होने लगेगी यानी उनका आकर्षण समाप्त होने लगेगा। अभी तो आपको रुचि होती है कि चटपटी चीज़ खा लें, फिर आप कहेंगे कि नहीं, यह गंदी चीज़ है, नहीं खानी चाहिए। शुद्ध सात्त्विक भोजन में आपकी रुचि अपने आप हो जाएगी। किसी को सिखाना नहीं पड़ेगा कि मांस नहीं खाना चाहिए, मदिरा नहीं पीना चाहिए। स्वतः आप उससे विरत हो जाएंगे। इस प्रकार इन्द्रियों के अर्थों से आप अपने आप को मोड़ लेंगे। आपकी उससे विरति हो जाएगी। जब इन्द्रियों के अर्थों से आपकी विरति हो जाएगी तो आप बहु–धन्धी नहीं रहेंगे कि यह भी कर लो और वो भी कर लो। फिर आप आवश्यक कर्म में ही अपने आप को लगायेंगे। वो कर्म आप कर्त्तव्य समझ करके करेंगे और आसक्ति से मुक्त हो जायेंगे।

<u>समय का सदुपयोग करें</u> :– यहाँ 'कर्मसु' माने कर्त्तव्य कर्म नहीं है, बिना मतलब के कर्म में लगे रहने की बात है। जब कोई मित्र आया तो बैठे गप्पें हांक रहे हैं। घंटों बीत गए उसमें केवल इसलिए कि मित्र आया है, यदि उसके साथ एक घंटा नहीं बातें करेंगे तो वह जाकर क्या कहेगा? कहेगा क्या, भाई। कोई मतलब की बात हुई तो कर लिए नहीं तो उसको नमस्कार किए कि फिर मिलेंगे। समय है तो उसका सदुपयोग कीजिए। आपको एक घंटे नहीं २४ घंटे मिले हैं। २४ घंटों में आप ६ घंटे या ८ घंटे जीविका के लिए लगा दीजिए फिर भी तो १६ घंटे आपके पास हैं। १६ घंटों में आप आठ घंटे सो जाइये हालांकि सोने के लिए आठ घंटे नहीं हैं। प्रत्येक स्वस्थ व्यक्ति के लिए छः घंटे सोने की व्यवस्था है। दस बजे से चार बजे तक या ११ बजे सोते हो तो पांच बजे तक। यदि छः घंटे गहरी नींद आ जाए तो पूरी शक्ति जो दिन भर में खोते हो पुनः प्राप्त कर लेंगे। यदि गहरी नींद आए तब? यदि आप आधा सो रहे हो आधा जाग रहे हो अर्थात्

बिस्तर पर पढ़े करवटें बदल रहे हो तो आप अपने समय को बरबाद कर रहे हो। उससे क्या हो रहा है? आपकी हानि हो रही है। आपको कुछ मिल नहीं रहा। आपके शरीर में प्रमाद बढ़ रहा है। तमोगुण की वृद्धि हो रही है। आप आठ घंटे जीविका में लगाएं, छः घंटे सोने में लगाएं तो हो गए १४ घंटे। अब आपके पास दस घंटे बचे हुए हैं। क्या करते हैं उन दस घंटों में आप? अरे, नहाने–धोने, खाने–पीने, शौच आदि में कितना समय लगाओगे? चार घंटे उसमें भी लगा दीजिए। अब रह गए आपके पास छः घंटे। वो छः घंटे आप किसमें लगाते हैं? बे मतलब की बातों में, जिसका कोई प्रयोजन नहीं होता। यदि आप समय का सदुपयोग करें और यह समझ लें कि हमारे पास जो समय है, वह सीमित है। कितने दिन रहना है इस शरीर में कोई निश्चित है क्या? कोई निश्चित नहीं है। यदि संसार में कुछ अधिक मूल्यवान वस्तु है तो वह है अपना समय। इससे अधिक मूल्यवान कुछ नहीं है। अपना समय माने जितने श्वास मिले हुए हैं इस शरीर में रहने के लिए, वे मूल्यवान हैं।

जैसे एक व्यापारी पहले कुछ पैसा लगाता है फिर उसके बदले में अधिक पाने की चाह रखता है। थोड़ा लगाकर यदि अधिक मिल गया तो प्रसन्न हो जाता है। अधिक लगाने के बाद में थोड़ा मिला तो दुःखी हो जाता है। आप ज़रा सोचिए। श्वास आपकी अमूल्य सम्पत्ति है। श्वास के ऊपर समय आधारित है। इससे अमूल्य दुनिया में आपके पास कोई वस्तु नहीं और उसी को आप लगाते हैं कर्म के रूप में। उसके बदले में आपको मिलता है कर्म का फल। आप जरा सोचिए कि मूल्यवान श्वास है या कर्म का फल? इसको जांचिए। एक घंटे काम आपने किया और उसके बदले में जो आपको मिला है, क्या आप वो देकर के एक घंटे का श्वास वापिस ले सकते हैं? नहीं ले सकते। आपने १०० रुपया लगाकर ऐसी वस्तु खरीदी जिसे यदि आप बाजार में पुनः बेचने जाओ तो कोई सौ पैसे भी देने के लिए तैयार नहीं है, तो आप क्या कहेंगे? आपका व्यापार अच्छा रहा या खराब रहा? आपने एक घंटा लगाया और घंटे में आपने इतना यह पदार्थ कमाया, क्या उस पदार्थ को दे करके एक घंटा आपका वापिस आ सकता है? नहीं आ सकता। फिर पदार्थ मूल्यवान है या समय? आपने अपने समय का सदुपयोग किया है या दुरुपयोग? आप स्वयं सोचें। आपका व्यापार लाभदायक रहा या हानिकारक? यह तो एक घंटे की बात बता रहा हूँ। पूरा जीवन आपका इसी व्यापार में चला जाता है। हानि का सौदा करके रोते हुए चले ज़ाते हैं और बाद में जब वृद्धावस्था आती है, मृत्यु नज़दीक आती है तब भगवान् याद आता

है या कोई महात्मा याद आते हैं कि मेरे पर कृपा करके मेरा उद्धार कर दो। उद्धार क्या खाक हो जाएगा? उद्धार का कोई काम ही नहीं किया तो उद्धार कहाँ हो जाएगा? भई, समझो, सजग हो जाओ और अपने आपको सम्भालो। व्यर्थ के कर्मों में अपने समय का दुरुपयोग मत करो। जब आप साधना में लगेंगे तो अपने आप आपको उसकी महत्ता का बोध हो जाएगा तो आप जिन पदार्थों को मूल्यवान समझते थे उनकी तरफ आकर्षित नहीं होंगे। आप उनका सेवन उतनी मात्रा में ही करेंगे जितनी की उनकी उपयोगिता है। उनकी उपयोगिता नहीं है, ऐसी बात मैं नहीं मानता। उनकी उपयोगिता है आपकी शरीर रक्षा के लिए, आपके स्वास्थ्य के लिए। तो जितनी मात्रा में उनकी उपयोगिता है उनको वही स्थान दो न। उससे अधिक स्थान क्यों देते हो?

आप ज़रा यह सोचिए कि वस्त्र से आपकी शोभा है या आपसे वस्त्र की उपयोगिता है ? आज आदमी क्या समझता है? वस्त्र से हमारी शोभा है। कई लोगों को देखता हूँ कि अंग्रेज़ी का एक अक्षर नहीं जानते लेकिन सूट-बूट पहन कर टाई जरूर लटकायेंगे और ऐसे बन कर चलेंगे जिससे लोग समझें कि बड़े साहब हैं। उस वस्त्र के प्रति प्रलोभन है साहिब का, वह वस्त्र जो पहनेगा वह साहिब हो जायेगा। आप सोचिए कि क्या उस वस्त्र को पहननें से आप साहिब बन जायेंगे? इसलिए यह बात याद रखें कि आप से ही समस्त पदार्थों का मूल्य है। पदार्थों से आपका मूल्य नहीं है। अध्यात्मवादी जीवन की यह प्रथम सीख है कि पदार्थों से आप अपना मूल्य मत मानिए। पदार्थ से मनुष्य का मूल्य कभी नहीं होता। पदार्थ की उपयोगिता मनुष्य से है।

भोजन बहुत सुन्दर बना हुआ है, यदि खाने वाला ही नहीं है तो किस काम का है वह भोजन ? व्यर्थ है। यदि आपको भूख ही नहीं है, बदहजमी हो गई है और सुन्दर भोजन आपके सामने पड़ा है तो क्या उपयोगिता है उसकी? कोई उपयोगिता नहीं है इसलिए प्रकृति की उपयोगिता पुरुष से है। जड़ की उपयोगिता चेतन से है। चेतन की उपयोगिता जड़ से नहीं है। जड़ तो चेतन के प्रयोग के लिए है। एक दिन और मैंने बताया था कि यदि आप जड़ पदार्थों के ऊपर अपने प्रयोगाधिकार समझेंगे तो आप सुखी रहेंगे लेकिन आप प्रयोगाधिकार नहीं समझते। आप समझते हैं कि यदि जड़ पदार्थ आपके पास होगा तो आपकी महिमा बढ़ेगी। आजकल लोग कहते हैं कि महाराज! जो धर्मात्मा हैं, जो अच्छे रास्ते पर चलते हैं, उनको कोई नहीं पूछता। जो बेईमानी करते हैं, अनाचार, अत्याचार करके धन इक्टठा करते हैं उनकी पूजा होती है लेकिन यह भ्रांति है।

याद रखो, आप लोग कभी किसी धनी का दर्शन करने के लिए यात्रा किए? नहीं किए। किसके दर्शन के लिए यात्रा करते हैं? महापुरुषों तथा तीर्थों के दर्शन के लिए। वहाँ महात्मा नहीं महात्मा का अवशेष पड़ा हुआ है इसलिए उसको तीर्थ मानते हैं। एक करोड़ से ज्यादा आदमी हरिद्वार में इक्टठा होंगे, किसके दर्शन के लिए? भारत के प्रधानमंत्री के दर्शन के लिए? नहीं, आज भी इस देश में जो श्रद्धा, आस्था और विश्वास है वह उनके लिए है जो संसार से कुछ नहीं चाहते। जो संसार से कुछ भी चाहता है वो संसार की आस्था का पात्र नहीं बनता इसलिए आपके लिए वही आदर्श है जो आपसे कुछ नहीं चाहता। चाह आ गई तो फिर वह आपके लिए आदर्श नहीं होगा। आप में भी चाह है उसमें भी चाह है फिर आपमें और उसमें क्या अन्तर होगा? शास्त्रकारों ने बताया है कि आपके जीवन में सारे यथार्थ तत्त्व होने चाहिए और बुद्धि के प्रकाश में इनका आप साक्षात्कार कर सकते हैं तो –

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसङ्कल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते।।

(गीता ६/४)

जिस समय न इन्द्रियों के अर्थों में, न उनको प्राप्त करने वाले कर्मों में ही आसक्त होता है, उस काल में सर्व–संकल्पों के त्यागी पुरुष को योगारूढ़ कहा जाता है। यहाँ सर्वसंकल्प संन्यासी कहा और दूसरे श्लोक में भगवान् ने एक जगह कहा है –

संकल्प प्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।

(गीता ६/२४)

संकल्प से उत्पन्न होने वाली सम्पूर्ण कामनाओं का वह त्याग कर देता है। यहाँ पर कहा है –

सर्व संकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते।

सम्पूर्ण संकल्पों का उसने त्याग कर दिया। संन्यास माने सम्यक् न्यास। संन्यासी माने 'सम्यक प्रकारेण न्यास संन्यासः' लाल कपड़े पहन कर कोई संन्यासी नहीं बन जाता। यदि बाहर से तो पूर्ण त्याग कर दिया लेकिन अन्तर से चिन्तन कर रहा है फिर वह सन्यासी नहीं होगा। कहा संन्यासी कौन है ? जो पूर्ण कामनाओं का त्याग कर एक अद्वैत भाव से प्रतिष्ठित रहता है, ज्ञान रूपी दण्ड जिसके हाथ में होता है, उसे संन्यासी कहते हैं। लोगों में ज्ञान तो है नहीं, सबसे आशा किए रहते हैं और लकड़ी का डण्डा हाथ में लेकर घूमते हैं। उपनिषद्

कहती है कि वो महाघोर रौरव नामक नरक में प्रवेश करते हैं। मेरे कहने का अभिप्राय कि आप अपने घर में रहकर भी कामात्मक संकल्प का त्याग कर सकते हैं। वही क्रिया आप भावात्मक संकल्प से पूरा कर सकते हैं।

कर्म करो ,कामना नहीं भावना से युक्त होकर :– एक दिन मैंने बताया था कि कामना और भावना में क्या अन्तर है। जो काम आप परमात्मा को साक्षी रख कर कर रहे हैं वो भावनात्मक है और जो अपनी इन्द्रियों की तृप्ति के लिए कर रहे हैं वो कामनात्मक है। हमारे यहाँ वैष्णवाचार्यों ने इसीलिए एक व्यवस्था दी कि जो तुम काम करो भगवान् के नाते करो। देवियों से कहा–भोजन बनाओ भगवान् को भोग लगाने के लिए और फिर उसके बाद में प्रसाद रूप से तुम्हारा सारा परिवार भोजन करे। भगवान् तो भोजन खायेगा नहीं। डरो नहीं कि भगवान् सारा खा जायेगा तो बाल–बच्चे भूखे रह जायेंगे। न, न। भोजन बना करके भगवान् को समर्पित करो। भावना यह हो कि यह भगवान् को भोग लगेगा इसलिए जो भी काम करो प्रत्येक काम के पीछे भगवान् को प्रतिष्ठित कर दो। भगवद् भावना से भावित होकर जिस कर्म को आप करेंगे वह कर्म कामना शून्य होगा, याद रखिए। कामना शून्य हो करके फिर वही कर्म आपकी पूजा बन जायेगा, फिर अलग से आपको आरती उतारने और घंटी बजाने की जरूरत नहीं रहेगी।

बहुत वर्ष पूर्व की बात है जब मैं उदयपुर में बाई दी राज कुण्ड पर रहा करता था। महन्त जी महाराज के साथ वहाँ बैठा हुआ था इतने में एक सज्जन मन्दिर में आए। पहले तो प्रणाम किया फिर सो गए, फिर उठे कान पकड़ लिए, खड़े हो गए, फिर बैठ गए। मैं उनका उठक–बैठक देखता रहा, जब प्रणाम करके जाने लगे तो मैंने उन्हें बुलाया और कहा कि यह कान पकड़ कर उठक–बैठक क्यों कर रहे थे? मैंने कहा यह तो इस्लाम धर्म में है, ऐसा करके नमाज़ पढ़ी जाती है। हिन्दू धर्म में तो यह प्रक्रिया है नहीं, तुम कौन सी प्रक्रिया से प्रार्थना करते हो? उसने कहा कि स्वामी जी क्या करें, हम दुकानदार हैं। अनेक प्रकार के झूठ बोलता हूँ, दिन भर पाप करता हूँ, यहाँ आकर भगवान् के सामने कान पकड़ कर क्षमा मांगता हूं। मैंने कहा कि इसका अभिप्राय है कि तुम्हारे मुसलमान भाईयों के यहाँ तो खुदाबंद ताला है और तुम्हारे लिए ताला में बंद खुदा हो गया? जिन व्यक्तियों के साथ बेईमानी करते हो, झूठ बोलते हो वहाँ भगवान् नहीं दिखाई देता तुम्हें? यहीं दिखाई देता है कि शाम को कुण्ड के मन्दिर में जाऊँगा और क्षमा मांग आऊँगा। भगवान् इतना बुद्धू नहीं है, इतना भोला नहीं है कि जो तुम करते हो केवल हाथ जोड़ने मात्र से, कान पकड़ने मात्र से तुम्हें क्षमा कर देगा। कल

सुबह फिर तुम वही शुरू कर दोगे। भगवान् ने गीता में कहा है कि –

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।

(गीता ९/३०)

घोर दुराचारी क्यों न हो लेकिन अनन्य भाव से मेरी शरण में आ जाए। अनन्य भाव का अभिप्राय क्या होता है? 'सम्यग्व्यवसितो हि सः' उसने अब दृढ़ निश्चय कर लिया कि आज से अब अनर्थमय कर्म मैं नहीं करूंगा, अब ऐसी बुराई मैं नहीं करूंगा'। तब तो पीछे की अज्ञानता में हुई बुराई माफ हो जाती है। मैंने कहा कि यह तो क्रिस्चियनों का धर्म है कि छः दिन पाप करते रहो और सातवें दिन चर्च में जाकर माफ करवा लो। छः दिन फिर पाप करो और फिर जाकर माफ करवालो। यह कोई तरीका नहीं है लेकिन मनुष्य की वृत्ति है। यह अज्ञानता का परिणाम है कि जो यह समझता है कि यदि मैं यह नहीं करूंगा तो ऐसा नहीं होगा लेकिन आप लोग जो साधना के विषय में सुने हैं, उसको समझो और तदनुसार अपने जीवन को जीने की व्यवस्था करो–

सर्व संकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते।

(गीता ६/४)

जो सम्पूर्ण संकल्पों का पूर्ण रूप से त्याग कर देता है, केवल भगवद् भावना से प्रेरित हो करके अपने कर्त्तव्य के पालन में निरत रहता है, वो योगारूढ़ कहा जाता है। जब आप योग मार्ग पर आरुढ़ हो जायेंगे, आगे बढ़ने लगेंगे तो आपका जीवन धन्य हो जाएगा और मेरा जो यह प्रयत्न है, वह भी सार्थक हो जाएगा। मुझे जो कुछ जीवन के लिए उपयोगी बताना था वह सभी मैंने आप लोगों को बता दिया है। प्रभु से प्रार्थना है कि वह अपनी करुणा से आप लोगों में इतनी सामर्थ्य प्रदान करे जिससे आप उसके बताए हुए इस दिव्य मार्ग के पथिक बन सकें। इन्हीं शब्दों के साथ बहुत–बहुत मंगल कामनाएं तथा बहुत–बहुत आशीर्वाद देते हुए मैं अपनी वाणी को विराम दूंगा।

हरि ॐ तत्सत्

सम्पर्क सूत्र

ब्रह्मर्षि आश्रम
विराट् नगर् पिंजौर (हरियाणा)
पिन- 134102
फोन :-01733-266170

ब्रह्मर्षि योगाश्रम
28-बी, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-110032
फोन :-011-22821660,22821943

ब्रह्मर्षि बावरा शिक्षा निकेतन
माधोपुरी, गऊशाला रोड़, लुधियाना
फोन :-0161-2700141,270631

ब्रह्मर्षि बावरा शिक्षा निकेतन
(अंग्रेजी मीडियम)
बेअन्तपुरा, चण्डीगढ़ रोड़, लुधियाना
फोन :-0161-2666406,2608406

ब्रह्मर्षि बावरा शान्ति विद्यापीठ
दीनानगर, धार रोड़, उधमपुर (जे.के.)
फोन :-01992-271080

ब्रह्मर्षि प्राकृतिक चिकित्सालय योग आश्रम
पुरी फार्म्स, जोड़ियां, रादौर रोड़,
यमुनानगर-135001(हरियाणा)
फोनः- 01732-279846

ब्रह्मर्षि बावरा विद्या मन्दिर
चककिशुनदास, ज्ञानपुर, भदोही,
वाराणसी (उ0प्र0)

ब्रह्मर्षि योगाश्रम
न्यू बाईपास, ऋषिकेश रोड़,
भूपतवाला, हरिद्वार (उ0 प्र0)
फोनः-0133-461018

श्रीगीता रामायण सेवा संघ
अशोक नगर, मोक्ष मार्ग,
उदयपुर (राजस्थान)
फोनः-0294-2414140

Metaphysical Science Research Institute
Sec.19-A, Chandigarh
Phone : 0172-725390, 540128

Brahmrishi Mission School
Jarar, Devvan, Piplaage
Bhunter, Kullu (H.P.)
Ph. 01902-265518,266043

Brahmrishi Mission School
Hanumangarh Road,
Opp. New Water Works,
ABOHAR-152116
Ph. : 01634-229615, 230615

Brahmrishi Misson
278, Heston Road, Heston
Middlesex TW5 ORT U.K.
Phone : 0208-571-3879

Brahmriahi Mission CANADA
Shri-Ram-Dham Hindu Temple
525 Bridge Street,
East Kitchener, Ontario
CANADA N2K3C5
Phone : (519) 579-1486

Brahmrishi Ashram
1246, North Mantua Street, Kent,
Ohio- 44240, U.S.A..
Phone : 330-678-3793

Brahmrishi Ashram
717, Loosduinseweg,
2571 AM-Denhaag, Nederland,
Ph.: 070-3620961

हमारे प्रकाशन

❖ शक्ति तत्त्व बोध ❖ आपकी अपनी बात ❖ गीता ज्ञान विज्ञान योग
❖ श्रीहनुमत् विनय पच्चीसी ❖ श्री चण्डिकाशतक ❖ श्री श्यामशतक ❖ मानस में धर्मरथ
❖ रामो विग्रहवान् धर्मः ❖ मानस महाकाव्य में नारी ❖ गीता तत्त्व बोध
❖ क्या वर्ण-व्यवस्था अभिशाप है ? ❖ राम नाम महिमा ❖ मानस के मोती ❖ जीवन विज्ञान
❖ भारत की आत्मा ❖ योगाकुंर ❖ साधना सूत्र ❖ गीता कर्म विज्ञान ❖ समाधान
❖ तत्त्व चिन्तन ❖ सन्त सन्देश ❖ भक्ति दर्शन (नारद भक्ति सूत्र) ❖ राम और रामायण
❖ क्रियायोग ❖ मानव पतन में हेतु ❖ योग पथ ❖ विश्व को हिन्दुओं का योगदान
❖ मानस में वैदिक सिद्धान्त ❖ सन्त लक्ष्ण ❖ श्री हनुमत हृदय ❖ संस्कृत भाषा का महत्व
❖ ब्रह्म और उसकी विशिष्टाभिव्यक्ति ❖ सहज समाधि भली ❖ ब्रह्मविद्या विज्ञान-प्रथम
❖ ब्रह्मविद्या विज्ञान—द्वितीय ❖ नारी ! तुलसी की दृष्टि में ❖ शिव तत्त्व बोध
❖ विश्व की समस्याओं का हल—अध्यात्मवाद ❖ हिन्दू धर्म सूत्र ❖ गीतोक्त बुद्धियोग
❖ चंडी दी वार (भगवती की स्तुति) ❖ काव्य सुधा ❖ श्री शिव शतक
❖ मानस में नवधा भक्ति ❖ महात्मा भरत ❖ हनुमत पंच रत्न
❖ राष्ट्र का मुखिया कौन ?(वज्रसूचिकोपनिषद् के आधार पर तात्त्विक विश्लेषण)
❖ श्रीमद्भगवद्गीता धर्म विज्ञान भाष्य (अध्याय १ एवं २)
❖ श्रीमद्भगवद्गीता धर्म विज्ञान भाष्य (अध्याय ३ एवं ४)
❖ श्रीमदभगवद्गीता धर्म विज्ञान भाष्य (अध्याय ५ एवं ६)
❖ श्रीमदभगवद्गीता धर्म विज्ञान भाष्य (अध्याय ७ एवं ८)
❖ वैदिक सनातन धर्म की वैज्ञानिक व्याख्या
❖ शास्त्र और श्रद्धा (एक तात्त्विक विश्लेषण) ❖ गीता प्रतिपादित योग मार्ग

Science of Stable Wisdom • The Science of *Pranav (om)* *(Commentary on Mandookyopanishad)* • How to be a Yogi • Towards Divinity • Yoga for life • The Hindu & its way of life • Essence of the Gita • Basic Principles of Yoga • Essays on the Kram Yoga • Lord Hanuman-Our Ideal • Meditation Technique • Science of the Absolute Knowledge *The Nature of Sacrifice *(Commentary on Ishopanishad)*

दिव्यालोक मासिक पत्रिका

सद्विचारों के प्रचार और प्रसार की मासिक पत्रिका

एकत्वमनुपश्यतः

ब्रह्मर्षि मिशन

दिव्यालोक प्रकाशन

ब्रह्मर्षि आश्रम, विराट् नगर, पिंजौर (हरियाणा)